नीरज
व्यक्तित्व
और
कृतित्व

कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि विविध विषयक सोद्देश्य, प्रेरणात्मक उपयोगी साहित्य प्रकाशित करना ही हमारा एक मात्र ध्येय है।

—प्रकाशक

"नीरज"

व्यक्तित्व और कृतित्व

•

डॉ० सुधा सक्सेना

•

प्रगति प्रकाशन, आगरा-३

मूल्य तीन रुपये

प्रथम संस्करण

प्रकाशक

प्रगति प्रकाशन
घटिया आजमखाँ रोड,
आगरा–३

प्रगति पुस्तक माला के मुख्य नियामक एवं सम्पादक • रामगोपाल परदेसी

संकेतिका

१ • नीरज
व्यक्ति : गोपाल ६

२ • नीरज
के प्रेरणा स्रोत १६

३ • नीरज
नदी किनारे से 'गीत भी अगीत भी' तक २२

४ • प्रथम
कृति नदी किनारे ३१

• नीरज
की दार्शनिकता ३९

६ • नीरज
के प्रतीक, बिम्ब ५५

७ • नीरज
का मानववाद ८०

८ • नीरज
का मृत्युवाद ९२

९ • नीरज
की सामाजिक प्रगतिशीलता १०२

१० • नीरज
के काव्य में उदात्तत्व ११६

११ • नीरज
की भाषा १२८

भूमिका

जल पलावन के पश्चात सृष्टि पर अकेले प्राणी बचे मनु और शातरूपा बीच में समुदर समाये जिसकी तरंगे हृदय की कोरों से छू-छू कर टकरा-टकरा कर लौट जाती थीं पर मनु की नियति में सम्भवतः लहरों का यह नर्तन न था और इसीलिए एक दिन समुद्र के कगारे टूट गये, प्रणय द्वेष बन वह निकला और फिर जब मनु ने आँखें खोलीं तो अपने को जल से थल में इड़ा के बुद्धि प्रदेश में पाया जहाँ के सूरज की सुनहरी किरणें उनकी आँखों को खुलने के लिए बाध्य कर रही थीं और श्रद्धा विहीन मनु श्रांत भाव से विगत की स्मृतियाँ सँजोये अनागत को देख रहे थे। यह ही तो सृष्टि के प्रारम्भ की कथा पर हर बार मानव सृष्टि में दुहराई जाती रही है; हर बार प्रणय की सीमाएँ टूटी हों और हर बार मनु श्रद्धा से दूर होकर व अपने ही निर्माण से भयभीत होकर द्वन्द्वात्मक स्थिति में अतीत और भविष्यत के मानव मस्तिष्क का विकास रुक गया हो आजतक सृष्टि इस द्वन्द्व विघटन और अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाई। आज का श्रद्धा विहीन मानव भी कभी परिताप पूर्ण हो और कभी आशापूर्ण आज का हर कवि भी मानव की इसी द्वन्द्वात्मक स्थिति का गायक है। अन्तर सिर्फ इतना है कि कोई श्रद्धा की विगत स्मृतियों में अधिक आत्मविस्तृत है; तो कोई इड़ा के बुद्धि प्रदेश की ओर अधिक आकर्षित।

नीरज आधुनिक युग के ऐसे कवि हैं जिन्हें श्रद्धा विहीन मनु से ही अधिक प्रेम ही इड़ा के लिए प्रयत्नशील मनु से अपेक्षाकृत कम। इसलिए नीरज मुख्यतः प्रेम और पीड़ा के कवि हैं। प्रेम जो अथ से इति तक, यहाँ से वहाँ तक, सुबह से शाम तक विस्तृत है, व्यापक है, वह व्यष्टि से समष्टि तक राष्ट्र से विश्व तक हर स्पंदित हृदय के स्पंदन की भाप है। यहाँ कवि का 'स्व' ही 'पर' हो गया है।

साहित्यिक राजनीति से नीरज सदैव दूर रहे हैं, वाद प्रतिवाद के बन्धनों में उनका काव्य कभी नहीं बँध पाया है, उनका काव्य मानव हृदय की सहज भावनाओं का प्रकाशन है न उनमें अनुभूति की कृत्रिमता है और न अभिव्यक्ति की। उन्होंने कभी नहीं सोचा कि आज का युग राजनीति का है, झण्डों, नगाड़ों और प्रसारित पाठों का है (चाहे वह प्रशस्ति पाठ अपना खुद का हो या अपने किसी मित्र का) उन्होंने नहीं समझा कि दलगत भावना के ये आवरण सहज दृष्टियों को भी धुंधला कर देते हैं उनमें मोतियाबिन्द पैदा कर देते हैं जिनसे काव्य के सत्-असत् का अन्तर अस्पष्ट हो जाता है, और इसलिए नीरज चर्चाओं, सभाओं, गोष्ठियों और पत्रिकाओं से सदा दूर रह गये।

इस पुस्तक में उनके कृतित्व का एक विवेचन अथवा विश्लेषण करने का प्रयत्न है। यह प्रयास साहित्य के पाठकों को नीरज के व्यक्तित्व और कृतित्व का पूर्ण और सही परिचय दे पायेगा ऐसी आशा है।

(हिन्दी विभाग)
राजकीय कन्या विद्यालय
तिमारपुर, दिल्ली—७

—सुधा सक्सेना

नीरज : व्यक्ति : गोपाल

कांपती लौ, यह सियाही, यह धुंआ, यह काजल,
उम्र सब अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी।
कौन समझे मेरी आँखों की नमी का मतलब,
जिन्दगी वेद थी पर जिल्द बंधाने में कटी।

नीरज जिस कवि का नाम है उसके व्यक्ति का नाम है गोपाल। नीरज जहाँ एक छंद है, एक गीत है, एक श्लोक है; वहाँ गोपाल एक दर्द है, एक अभाव है, असफलताओं—विवशताओं का एक गुमनाम कारवाँ। नीरज जहाँ अपने स्वर और वाणी के द्वारा सदा-सदा से सनाथ है वहाँ गोपाल वह है जो बचपन में ही अनाथ हो गया था, जिसने श्रम किया परन्तु फिर भी गरीबी, मजबूरी और हर निराशा को जिसे नियति मान कर स्वीकार करना पड़ा। अपना स्वास्थ्य, सौन्दर्य यानी सब कुछ देकर जिसने प्रयत्न किया सिर्फ जीवित रहने का, जिसने जन्म से अब तक सिर्फ सहन ही किया कभी भाग्य के द्वारा, कभी समय के द्वारा कभी सौन्दर्य के द्वारा, कभी प्रेम के द्वारा, और कभी लोक-प्रियता के द्वारा हर आँसू, हर सिसकी, हर सूनी रात को जिसने जिन्दगी दे दी पर कभी खुशी का ऊँचा उड़ता आँचल उसके बौने हाथों में न आ सका, जिसकी जिन्दगी आँसू की एक कभी न खत्म होने वाली कविता है। और नीरज है वह नाम जिसने गोपाल की हर मजबूरी के गीत गाये, जो जन्मजात कवि था, जिसने गोपाल की हर उदासी, हर सूनी रात को आवाज दे दी। हर आशा-निराशा, सफलता-असफलता को छंद की उन लयों में बाँध लिया जो जग के होठों पर

गीत बन गई। जिसे संसार ने आदर, प्यार और सत्कार दिया, जिसका अभिनंदन हुआ, अर्चना वंदना हुई ; और गोपाल के आँसुओं में सदा नीरज की मुस्कान दिखाई देती रही, उसकी सिसकियों में नीरज की स्वर लहरी थिरकती रही और उसकी सूनी रातें जिल्दों में बँध-बँध कर नीरज की पातियाँ और पुस्तकें बनती रहीं। उसका हर बलिदान नीरज का वरदान बन गया। मतलब यह कि गोपाल ने सहा सब कुछ पर कहा कुछ नहीं और नीरज ने कहा सब कुछ पर सहा कुछ नहीं—इसलिये कि नीरज कवि का नाम है और गोपाल व्यक्ति का।

कवि नीरज का पूरा नाम है गोपालदास सक्सैना। उनका जन्म ८ फरवरी १९२६ में इटावा के पुरावली गाँव में हुआ था। नीरज का शैशव स्नेह सिक्त रहा। माता-पिता का अटूट लाड़ प्यार उन पर था। पिता से तो उन्हें बेहद लगाव था पर शायद नियति का लेख कुछ और था। बालक गोपाल की जिन्दगी, जो भौतिक प्रगति के नाम पर सिर्फ ग्राम पाठशाला तक ही जा सकी थी, बहुत जल्दी अनाथ हो गई। सिर्फ ६ या ७ वर्ष की उम्र में ही पिता का प्यार भरा साया उन पर से उठ गया और जिंदगी की धूप बिना रोक-टोक उन तक आने और सताने लगी। और यहीं से नीरज के सुख का अध्याय समाप्त हो गया और संघर्षों का इतिहास शुरू हो गया। बालक गोपाल माँ की विवशता और परिस्थिति के आग्रह से अपने घर इटावा से अपनी बुआ-फूफा के पास एटा आ गया क्योंकि उसे पढ़ लिख कर जल्द से जल्द अपने पैरों पर खड़ा होना था। अब उसके जीवन का सबसे बड़ा आकर्षण था स्कूल; और तपते सूरज और जलती धरती के बीच स्कूल का वह रास्ता जीवन का सबसे लम्बा रास्ता था। बुआ और फूफा के घर का जीवन फूलों और काँटों की मिली-जुली यादगारें हैं, जिनमें कुछ में बहुत रंग, बहुत ही सुगंध है, पर कुछ की कसक गुलाब की गंध के साथ बराबर याद आती रहती है। एटा से ही उन्होंने प्रथम श्रेणी में १९४२ में हाईस्कूल परीक्षा पास की पर इच्छा रहते हुए भी वह साधनों के अभाव में आगे नहीं पढ़ सके और नौकरी की खोज में लग गये और जब कहीं सफलता नहीं मिली तो उत्तेजित हो 'रंगरूटों' में अपना नाम लिखा आये। पर माँ की ममता को यह सहन न हुआ कि उसके घर का उजाला यूँ जान बूझ कर अंधेरे का आलिंगन करे और एक दिन माँ

सप्लाई विभाग की यह नौकरी इनके जीवन में कठिनाइयों का एक स्वर्ण-युग थी। अपनी तनख्वाह में से आधी वह अपनी माँ को भेजते थे क्योंकि वहाँ दो छोटे और एक बड़े भाई और थे। बड़े भाई की शादी भी हो चुकी थी और वे पढ़ाई भी छोड़ चुके थे। नीरज को बहुत कम पैसों में देहली में गुजारा करना पड़ा। जिस जाफरी में वह रहते थे तनख्वाह का आठवाँ हिस्सा तो उसका किराया ही था। इसलिए ४ मील की दूरी पर स्थित अपने शाहजहाँ रोड के ऑफिस तक वह रोज पैदल जाते थे। खाना दिन में सिर्फ एक बार दोपहर में और वह भी पूड़ियों का—जिससे शाम को फिर भूख न लगे। इसी समय नौ महीने तक वह मलेरिया बुखार से ग्रस्त रहे पर क्योंकि छुट्टियाँ मिलनी असम्भव थीं इसलिये वह बराबर ऑफिस जाते रहे, जिसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ा और जो उनको सदा के लिए रोगी बना गया। कविता लिखना उन्होंने १२ या १४ साल की उम्र से ही शुरू कर दिया था। इस समय उन्होंने गांधी-जिन्ना मीटिंग पर एक कविता लिखी थी, जिसे आजकल के उर्दू के मशहूर शायर हफीज जालन्धरी ने सुना और बहुत प्रशंसा की और थोड़े समय बाद नीरज सप्लाई विभाग की वह नौकरी छोड़कर उनके कार्यालय में आ गये। हफीज जालन्धरी साहेब वहाँ Song publiciTy organisation में डाइरेक्टर थे, नीरज को यहाँ १२०) के वेतन पर Literary Assitant का स्थान मिला और काम था अपनी कविताओं द्वारा युद्ध का प्रचार करना। पर नीरज का हृदय इस कृत्रिम और देश-विरोधी वातावरण को समर्पण न कर सका। आत्मा का हनन कर मात्र बुद्धि के बल पर रचनाएँ करना उनको स्वीकार नहीं था। वह कुछ दिन वहाँ रहे पर काम न कर सके फलतः बहुत शीघ्र नौकरी से अलग हो गये।

फिर नीरज की बेकारी उन्हें कानपुर ले आई अपने एक अभिन्न मित्र माया प्रकाश निगम के पास। कानपुर के वातावरण में नीरज के कवित्व का

अंकुर पनपा और लहलहाता हुआ पौधा बन गया जो फिर निरन्तर विकसित होता रहा। माया प्रकाश निगम ने नीरज को अपूर्व स्नेह और सहायता दी। १९४५ में नीरज स्थानीय डी० ए० वी० कॉलिज में क्लर्क हो गये। इसी समय उनका परिचय उर्दू शायर फरहत कानपुरी से हुआ जिन्होने उनके कवि को सदा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। कविता का बाह्य रूप बोध—यानी भाषा और छंदों का ज्ञान और आन्तरिक भाव बोध यानी अनुभवों और अनुभूतियों तक का ज्ञान उन्होंने नीरज को कराया। नीरज के कवि के निर्माण का बहुत बड़ा श्रेय उनको ही है। कानपुर में डी० ए० वी० कॉलिज में मात्र छः माह ही वह काम कर पाये तभी अपने मित्र माया प्रकाश निगम के प्रयत्नों से उन्हें स्विटजरलैंड की एक विदेशी कम्पनी Volkart Brothers में स्टेनो-टाइपिस्ट का स्थान मिल गया। यद्यपि यह कम्पनी विदेशी थी पर यहाँ नीरज को कविता करने और साहित्य समारोहों में जाने के लिए काफी समय मिलता रहा, जो आशातीत था। अभी तक नीरज के संघर्षों और पीड़ा का स्वरूप बाहिरी था पर अब उनके मानसिक संघर्षों और हृदय की पीड़ा का जन्म भी हुआ। इसी समय कवि-समारोहों के बीच उनका एक लड़की से परिचय हुआ जो बहुत जल्दी जीवन में भी महत्वपूर्ण बन बैठी, जिसने उन्हें और आगे पढ़ने और कविता करने की प्रेरणा दी, पर स्वयं बहुत जल्दी ही दुनिया की भीड़ में न जाने कहाँ खो गई। पर इस प्रेरणा ने उनके भीतर एक ऐसे मानसिक रोग की सृष्टि करदी जिसकी पीड़ा उन्हें सदा सालती रही और जिसका उपचार सदा अलभ्य रहा और कवि उसे ही अपने गीतों में निरन्तर गाता रहा।

१९५१ में नीरज ने कानपुर में ही District Information Officer की नौकरी कर ली पर केवल एक साल बाद ही उसे छोड़ देना पड़ा क्योंकि सरकारी नौकरी का उन्हें बड़ा कटु अनुभव मिला। उन्होंने देखा कि सच्चाई और ईमानदारी का वहाँ कोई स्थान नहीं है और उनके कृतित्व की वहाँ प्रगति भी सम्भव नहीं क्योंकि वहाँ सदैव मुखौटे लगाने वाला ही आदरणीय होता है। वहाँ सिर्फ वही प्रगति कर सकते हैं जो सच को छिपाकर सिर्फ वह कहते हों जो उनके बॉस सुनना चाहते हों। चाटुकारों और चापलूसों की दुनियाँ में कवि की साँस घुटने लगी थी और उन्होंने वह नौकरी भी छोड़ दी।

अब तक छुटपुट प्रयत्नों से वह बी० ए० तो कर चुके थे जिसमें सदैव उन्होंने प्रथम श्रेणी ही ली थी। १९५३ में उन्होंने डी० ए० वी० कालेज से एम० ए० (हिन्दी) भी प्रथम श्रेणी में ही किया। नीरज कवि के रूप में पर्याप्त प्रसिद्ध हो गये थे। प्रथम श्रेणी आने पर कालिज में ही उन्हें नौकरी देने का वचन देकर भी नौकरी नहीं दी गई क्योंकि प्रिन्सिपल का कहना था—You are too popular among students specially among girls. और प्रथम आने पर भी उन्हें दो साल तक बेकार रहना पड़ा। पर इस समय ने उनके कवि के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दिया और वह हिन्दी के एक अत्यन्त प्रसिद्ध कवि के रूप में माने जाने लगे। उस समय की लिखी हुई बहुत-सी कविताएँ उनके काव्य-व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ बन गईं। उसी समय का लिखा हुआ एक गीत—'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के—सन् १९५० में उनके जीवन में एक प्यार भरा इतिहास बनकर आया पर जिसका अंत हुआ वहीं जाकर ही—

सुख के साथी मिले हजारों ही लेकिन,
दुख में साथ निभाने वाला नहीं मिला।

१९५६ में कानपुर छोड़कर नीरज जी मेरठ आ गये पर किन्हीं कारणों से वहाँ रह न सके और १९५६ में ही धर्म समाज कालेज अलीगढ़ में आ गये जहाँ वे अब तक हैं। अलीगढ़ आकर नीरज जी के कवि रूप को ख्याति तो हुई ही पर जितनी लोकप्रियता साहित्य के माध्यम से उन्हें मिली उतनी ही फिल्मों के माध्यम से भी प्राप्त हुई। नीरज का फिल्मों में प्रवेश भी नितांत अप्रत्याशित रूप से हुआ। १९६० में उनके जन्म-दिन ८ फरवरी—को बम्बई में विशिष्ट समारोह हुआ जिसमें उन्हें सार्वजनिक सम्मान के साथ तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री चव्हाण द्वारा ५००० रु० की थैली भी भेंट की गई। उसी के दूसरे दिन निर्माता डाइरेक्टर आर० चन्द्रा ने उनसे अपनी फिल्म के कान्ट्रेक्ट पर हस्ताक्षर करा लिए। और आज वह फिल्म में भी अपने उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभा रहे हैं।

अब तक उनकी दस पुस्तकें और कुछ संपादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :

१. संघर्ष— १९४२ दूसरा संस्करण 'नदी किनारे'
२. अन्तर्ध्वनि— १९४६ दूसरा संस्करण 'लहर पुकारे'
३. दो गीत—
४. विभावरी— —'बादर बरस गयो'
५. आसावरी
६. प्राण गीत
७. दर्द दिया है
८. नीरज की पाती
९. मुक्तकी
१०. गीत भी अगीत भी—१९६२

सम्पादित—(१) हिन्दी के शृंगार गीत।
(२) हिन्दी के विरह गीत।
(३) हिन्दी रुबाइयाँ।

इतना सब होते हुए भी नीरज जी आधुनिक हिन्दी कविता के सर्वाधिक विवादास्पद व्यक्तित्व हैं। कोई उन्हें निराश मृत्युवादी कहता है तो कोई संत कवि, कोई हिन्दी की वीणा कहता है तो कोई अश्वघोष का नवीन संस्करण, लेकिन जिसने नीरज के जीवन और अन्तस की गहराई को झाँका है वह यह जान सकता है कि वह मूलतः मानव-प्रेम के गायक हैं। मानव-प्रेम में इतनी प्रगाढ़ उनकी आस्था है कि घृणा, द्वेष और निन्दा के दुर्वह वात्याचक्र में खड़े रहकर भी वे कहते रहे हैं—

जितना ज्यादा बाँट सको तुम बाँटो अपने प्यार को।

इतना कुछ सहा है उन्होंने समय, समाज और हिन्दी पुत्रों के हाथों कि उस सबका लेखा-जोखा यदि किया जाय तो शायद अलग से एक ग्रन्थ बन सकता है। जहाँ अपनी मर्मस्पर्शी अनुभूति, स्पष्ट दार्शनिकता, चिंतन तथा झरने की अबाध गति से बहती हुई सर्वसाधारण सुलभ भाषा तथा छलहीन व अकृत्रिम अभिव्यक्ति के द्वारा उन्होंने हिन्दी गीतों को एक नई दिशा, एक नई आधार भूमि प्रदान की है वहाँ अपने स्वर-माधुर्य के द्वारा हिन्दी कविता के पाठन की सर्वथा मौलिक विधि भी खोज निकाली है। इतना

सब होते हुए भी आज के तथाकथित आलोचक उन्हें मात्र कवि सम्मेलनी कवि कहकर उनसे उनका प्राप्य छीनने की कोशिश करते रहे हैं—आज भी कर रहे हैं। लेकिन वह जन-मानस में गहरे से गहरे प्रवेश होते जा रहे हैं। उनके प्रति जो इतनी धूल उछाली गई है उसका कारण केवल उनके शब्दों में यही है :—

पर यही अपराध मैं हर बार करता हूं।
आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं॥

तथा

दोषी है तो बस इतनी ही दोषी है मेरी तरुणाई।
अपनी उमर घटा कर मैंने हर आंसू की उमर बढ़ाई॥

नीरज के प्रेरणा स्रोत

नीरज कवि हैं उस हर अधूरे सपने के, उस हर बहते आंसू के, उस हर अनसुनी आवाज के, उस हर अनकही कहानी के, जो मानव के हृदय को कभी आंधी बना देती है, कभी सागर बना देती है, कभी उसे चिता की गर्म आग देती है तो कभी मलयज की शांत समीरण। इसलिए उनके काव्य के प्रेरक बने हैं वे हर आंसू, वह हर मुस्कान, वह हर दर्द, वह हर गीत, वह हर गम, वह हर गूंज जो मानव के सुख दुख दोनों की कहानी कहती है। काव्य के ये प्रेरक कहीं बाहर से नहीं आये हैं, ये उनके अपने अन्ततंम की मिटती-बनती आशा-निराशाएं हैं। जीवन ने, समाज ने और समय ने जो भी सपना दिया कवि को रात भर जागने का, जो भी आंसू दिया आंख धोने को, जो भी चोट दी सहन-शीलता का परिचय देने को, उस हर आंसू, हर स्वप्न, हर चोट के कवि हैं नीरज। नीरज के कवि व्यक्तित्व के लिए उत्तरदायी हैं वह पहाड़ सी जिम्मेंदारियां, वे खाइयां और वे मजबूरियां जिन्होंने जीवन को कहीं समतल नहीं रहने दिया और कवि ने इन्हीं खाइयों को पाटने और पहाड़ों को ढहाने के लिए—यानी अपने आप को समतल बनाने के लिए—अपनी ही आवाज से तोड़ना-भरना शुरू कर दिया। इस तरह उनके गीत उनके असन्तुलन को सन्तुलित करने, उनके अभावों को पूरा करने के माध्यम बन गये। इसीलिए अपने पहले ही संग्रह की भूमिका में कवि ने खुद लिखा है :

'किन्तु इतना संघर्षपूर्ण था तब मेरा जीवन और उत्तरदायित्वों के पहाड़ों का ऐसा बोझ था मेरे सिर पर कि यदि मैं गाकर

अपने भीतर का बोझ हल्का न करता तो शायद टूट-फूटकर रास्ते पर ही कहीं गिर जाता। तब मैंने कवि बनने के लिए नहीं, अपने जीवन के सूनेपन को अपनी ही आवाज से भरने के लिए गाया था।'

(भूमिका—नदी किनारे)

इस तरह तन, मन और आत्मा के स्तर पर जो कुछ भी उन्होंने सहा उन सब यातनाओं, कुंठाओं एवं ग्रंथियों के ही वे कवि हैं। ये कुण्ठाएं और ग्रन्थियां केवल उनकी अपनी नहीं हैं—व्यक्ति की ही हैं, समाज की भी हैं और सिर्फ समाज की ही नहीं हैं मानव मात्र की भी हैं और अक्सर मानव और समाज के द्वारा ही कवि तक आई हैं। इसलिए जहां उन्होंने व्यक्ति के स्तर पर नितांत वैयक्तिक सुख-दुख और संयोग-वियोग के गीत गाये हैं और व्यक्ति की ही पीड़ा का प्रसार सर्वत्र देखा है वहीं मानव समाज के हर रुदन और हास को भी छंदों की लयों में बांध दिया है। व्यक्ति के सुख-दुख ने जहां 'कारवां गुजर गया,' 'जिंदगी थक गई मौत चलती रही,' 'मेरा जीवन बिखर गया है,' 'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के,' 'आज तो मुझसे न शरमाओ,' 'आज जी भर देख लो तुम चांद को' जैसे नितांत वैयक्तिक गीत लिखवा दिये हैं, वहीं समाज के क्रन्दन और हाहाकार ने भी उन्हें मजबूर किया है। 'अब युद्ध नहीं होगा,' 'भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है,' 'नील की बेटी के नाम पाती,' 'सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है,' 'चालीस करोड़ बेकारों के नाम पाती' जैसी कविताएं लिखने को। समष्टि और व्यष्टि का हर स्वर उनके गीत का गायन है और इस तरह मानव मात्र का हर भाव उनके गीत में एक नया कथानक बनकर आया है।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि नीरज कवि जीवन में साहित्यिक परम्पराओं और समकालीन साहित्यिक वातावरण से सर्वथा अनभिज्ञ रहे हैं। कभी-कभी उन्होंने अपनी जैसी ही आवाज अन्य कंठों से निकलती भी अनुभव की थी और फिर प्रयत्न किया कि वे भी अपना स्वर उनके स्वर से मिलाकर गा लें। इस तरह कभी कभी-अन्य कवियों और मूर्तियों ने भी उन्हें लिखने की प्रेरणा दी है। इन सभी साहित्यिक प्रेरकों में सबसे पहले नाम आता है

'निशा निमन्त्रण' के कवि बच्चन का, जिनकी स्वर लहरी ने उन्हें उस समय प्रभावित किया जिस समय वह खुद ही नहीं समझ पाये थे कि उन्हें किस स्वर में गाना है। उनकी पहली ही कृति पर बच्चन के निशा निमन्त्रण की निराशा की घनी छाया दिखाई देती है। 'क्यों रुदनमय हो न उसका गान,' 'क्यों उसका जीवन भार न हो'—आदि गीतों में बच्चनजी की निराशा का स्वर बड़ा ही स्थाई रहा और कवि ने बहुत जल्दी ही स्वनिर्मित पथ पर चलना सीख लिया।

जिन कवियों का नीरज पर व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा है वे हैं कबीर खलील जिब्रान, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और मध्यकाल के सूफी कवि।

खलील जिब्रान की पीड़ा की गहनतम अनुभूति और तीव्रतम अभिव्यक्ति से वे अथ से इति तक प्रभावित रहे हैं। उनका रूढ़ियों और धार्मिक आडम्बर वाद से विरोध का स्वर भी खलील जिब्रान से सीखा हुआ है। सम्भवतः उनके अचेतन मन पर सबसे अधिक व्यापक और गहरा प्रभाव खलील जिब्रान की पीड़ा का ही पड़ा है और इसी में आकर समावेश हो गया है बुद्ध के दुःखवाद का, जिसने करुणा को उनके गीतों का मूलस्वर बना दिया है। बुद्ध की भांति नीरज भी जीवन को दुखमय स्वीकार करते हैं। जीवन में सुख उतना ही क्षणिक और ऐन्द्रिजालिक है जितनी धूप में घास पर चमकती ओस की बूंदें। जीवन का यह दुखवाद मानव मात्र के प्रति एक सहानुभूति की सर्जना करता है वैसी ही जैसी एक पीड़ित को दूसरे पीड़ित को देखकर होती है और यहीं से उनके मानव प्रेम के दर्शन का आरम्भ होता है। दुख ने ही मानव प्रेम को जन्म दिया है और व्यष्टि तथा समष्टि को एक राह पर लाकर हमसफर बना दिया है। उन्होंने स्वयं कहा है :—

> **मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर में रहूँ अकेला पर,**
> **सुख ने दरवाजा बंद किया दुख ने दरवाजा खोल दिया।**

वस्तुतः करुणा हृदय को एक ऐसे स्तर पर ले आती है जहाँ बुद्धि से उत्पन्न रागाद्वेष स्वयं समाप्त हो जाता है और प्रेम—विशुद्ध मानव प्रेम का जन्म होता है। नीरज के 'उसको भी अपनाता चल,' 'आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,' 'एक नहीं दो नहीं हजारों साझी मेरे प्यार में,'

'कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है'—आदि गीतों में इसी मानव प्रेम के दर्शन होते हैं।

उनके काव्य में उदात्त तत्त्व रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रभाव से आया है। रवीन्द्रनाथ का विश्वप्रेम और मानवप्रेम सभी बड़े उदात्त रूप में हमारे समक्ष आते हैं। कोई छोटी या क्षुद्र बात उनके द्वारा नहीं कही गई है। नीरज के काव्य में भी उदात्तता है। चोट खाने पर ही उनका अहम् व्याकुल होकर अनर्गल प्रलाप या अपशब्द नहीं कहने लगता, उसका उदात्तीकरण हो जाता है जो जीवन संग्राम में उनकी आस्था और अनन्त विकास का उद्घोषक बन जाता है। अपने वैयक्तिक सुख-दुख में भी यह उदात्तीकरण प्रायः हुआ है और इससे वह व्यक्ति की व्यक्ति के लिए पीड़ा न बनकर उस अनन्त और असीम के प्रति एक व्याकुलता बन गई है। रहस्यभावना का प्रस्फुटन उदात्तता का ही प्रमाण है। उनकी उदात्तभावना ने नितांत व्यक्तिगत सम्बन्धों को भी समाज के परिवेश में रख कर देखा है। उनके द्वारा संग्रहीत नितांत व्यक्तिगत पत्रों (लिख लिख भेजत पाती) के संग्रह की प्रेरक भी यह उदात्त भावना है।

सूफी कवियों की 'प्रेम की पीर' ने भी नीरज को प्रभावित किया है। नीरज में रहस्यभावना सूफियों से ही आई प्रतीत होती है। नीरज की मान्यता है कि रहस्य ही कविता को कविता बनाता है। इसी कारण उनकी प्रेम और संयोग की कविताओं में प्रायः कुछ अस्पष्टता, रहस्य की धुंधली सी छाया रहती है। उनके 'जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया,' 'निराकार जब तुम्हें दिया आकर स्वयं आकार होगया,' 'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के' आदि गीतों में यही रहस्यवादी स्वर उभर कर आया है। उनके 'माँ' को सम्बोधन करके लिखे गये गीत, जो 'गीत भी अगीत भी,' में संकलित हैं शुद्ध रहस्यवादी कोटि के हैं, पर ऐसे शुद्ध रहस्यवादी कोटि के गीत नीरज ने कम ही लिखे हैं, प्रायः उन्होंने वैयक्तिक प्रेम पर ही रहस्य का आवरण डालने की चेष्टा की है।

नीरज में कबीर की शैली के अटपटेपन का आभास भी कहीं-कहीं होता है। कबीर की भाँति नीरज ने भी अछूते, आवारा और अनाथ शब्दों का उद्धार किया है जो रास्ते या गलियों-चौराहों पर अभिव्यक्ति के लिये छटपटा रहे थे। यह नीरज की भाषा की सबसे सशक्त और मौलिक विशेषता है।

प्रचलित और रोजमर्रा के उपेक्षित शब्दों में अर्थगाम्भीर्य भर देना उन्होंने कबीर से ही सीखा है। ऐसे स्थलों पर शब्दों में सहज रागात्मकता रहने से अर्थ सहज ग्राह्य हो जाता है। नीरज ने प्रायः ऐसे ही उपेक्षित शब्दों को नया जीवन दिया है। शैली में अटपटापन जरूर है पर वह अनगढ़ नहीं है। भावों और अर्थों की दृष्टि से वह अत्यन्त समृद्ध है, उनमें नवीन प्रतीक विधान है, नवीन बिम्बविधान है :—

> एक हवा का झोंका जीवन दो क्षण का मेहमान है।
> अरे ठहरना कहाँ यहाँ गिरवी हर एक मकान है।
> व्यर्थ सुनहरी धूप और यह व्यर्थ रुपहरी चाँदनी,
> हर प्रकाश के साथ किसी अँधियारे की पहचान है।
> चमकीली चोली-चूनर पर मत इतरा यूँ साँवरी,
> सबको चादर यहाँ एक सी मिलती चलती बार में।

यहाँ प्रयुक्त गिरवी मकान, चोली-चूनर और चादर सभी हमारे बीच से उठाए गये उपमान हैं जिनसे प्रतीकार्थ की व्यंजना की गई है। प्रचलित शब्दों में भाव गाम्भीर्य समो देने की यह शैली कबीर से ही प्रभावित है। परन्तु कबीर की भाँति वह मात्र उपदेशक या समाज सुधारक नहीं हैं, उनका कथ्य सूफियों के अधिक निकट है।

अपनी अभिव्यक्ति में नीरज जी ने उर्दू कविता के भी गुण ग्रहण किये हैं। रुबाइयाँ और गजलें उन्होंने ही हिन्दी को लिखनी सिखाई। वस्तुतः वह उर्दू कवियों से प्रभावित नहीं रहे हैं। उर्दू भाषा की नजाकत, मुहावरे बन्दी और शब्दों का सही प्रयोग ही वह आकर्षण है जिन्होंने उन्हें उर्दू भाषा के करीब ला दिया है। उन्होंने ही हिन्दी को सबसे पहले श्वास के बजाय से सांस, उम्र के बजाय उमर, कारवाँ निकल गया के बजाय कारवाँ गुजर गया कहना सिखाया है। अक्सर उनकी कविताओं पर उर्दूपन का आरोप किया जाता है पर लोग भूल जाते हैं कि वर्तमान पीढ़ी के वह ही एक अकेले कवि हैं जिनकी भाषा इतनी समृद्ध और इतनी भावपूर्ण है कि गहरी से गहरी बात को सरलतम शब्दों में कह लेती है और इसका कारण है उर्दू भाषा के अनुसार शब्दों का विन्यास कर सकने की क्षमता। इस कवि ने उस युग में लिखना आरम्भ किया था जब हिन्दी को इने-गिने श्रोता और पाठक ही प्राप्त थे और उर्दू के हजारों

श्रोता और पाठक थे। तब हिन्दुस्तानी भाषा के माध्यम से इस कवि ने ही हिन्दी गीतों को जन-जन के होठों पर बिठला दिया। हिन्दी कविता को सामाजिक और लोकप्रिय बनाने का बहुत बड़ा श्रेय नीरज जी को ही है।

पर इस सब के बाद भी नीरज टैगोर, जिब्रान, कबीर, अरविन्द सूफी कवियों या बच्चन का रूपांतर नहीं हैं, क्योंकि उनकी मूल प्रेरणा है उनका स्वयं का जीवन और उनके स्वयं के समाज और राष्ट्र का परिवेश—इन सबको अश्रु और हास, सुख और दुख जिसकी शिक्षा किसी विद्यालय में नहीं पाई जा सकती और जिसको किसी भी प्रकार की किताबें पढ़ कर नहीं सीखा जा सकता। उनके गीतों में व्यक्त उनका हर भाव, हर अभिव्यक्ति उनकी अपनी है—इसीलिए प्रत्येक की भी है—

> क्योंकि मेरे पास जो कुछ है
> मेरा नहीं वह संसार का है
> मेरा हर गीत, हर अश्रु
> मेरा तन
> मेरा मन
> मेरा धन
> दो चार का नहीं, हजार का है।

नीरज : 'नदी किनारे' से 'गीत भी अगीत भी' तक

नीरज का काव्यमय व्यक्तित्व पीड़ा का एक ऐसा गीत है जो हर बार एक नई लय, नये स्वर, नये छंद के साथ गाया गया है। क्योंकि पीड़ा प्रेम का प्रतिदान है इसलिये प्रेम भी इसमें अनिवार्य रूप से सम्मिलित हो गया है, और उनका काव्य जीवन इस प्रेम से पीड़ा तक के क्षेत्र को हर ठाँव रुकते-रुकते, हर गली गाते-गाते पार कर गया है। और इस तरह से उनके गीतों में प्रेम और पीड़ा के हर स्तर आ गये हैं। इसी से उनके स्वरों में कभी आंसू हैं तो कभी हास, कभी जीवन है तो कभी मृत्यु, कभी व्यक्ति है तो कभी समाज। प्रेम का एक दीपक लेकर उनकी काव्य-प्रतिभा मानव के सुख-दुख के हर नगर में--हर गली में घूम आई है और इस यात्रा में जहां-जहां पड़ाव पड़ा है वहां ही उनकी प्रेम और पीड़ा का वह अनन्त गीत अखंड बनकर एक पुस्तक बन गया है। अब तक यानी १९४४ से १९६४ तक उनकी काव्य-यात्रा के दस पड़ाव पड़ चुके हैं और उनका कारवां निरन्तर यात्रा पर आगे बढ़ता जा रहा है।

इस यात्रा में सबसे पहला पड़ाव है 'नदी किनारे' (यही संग्रह 'संघर्ष' नाम से १९४४ में छप चुका था) जो पड़ाव उस रूप में नहीं है जिस रूप में वह यात्रा के किसी मोड़ की, किसी विशिष्ट बिन्दु की सूचना दे, वह महज रास्ता है घर से निकलकर नदी किनारे तक आने का, इसलिए वह सिर्फ कवि के आने भर की सूचना देता है, उसके कहीं पहुँच जाने की नहीं। पर वह नदी

की वाहों में लहरों से खेलने की आकुलता जरूर पैदा कर देता है, तट से उतर कर बीच मँझधार में आने की विवशता को जन्म देता है, जो उसके काव्य जीवन के प्रारम्भ का एक महत्वपूर्ण सोपान है। 'नदी किनारे' संग्रह में कवि के किशोर काल की लिखी हुई साठ छोटी-छोटी कवितायें संग्रहीत हैं। यहां कहने को भी उसके पास बहुत कुछ नहीं है पर उसकी छटपटाहट, उसकी विवशता में समाज के प्रति शिकायत बहुत है और बहुत रूपों में उभर कर आती है। एक ही एकाकीपन की वेदना है जो वार-वार आकर नई तरह से अपना दर्द सुना जाती है। यहां समाज और जीवन की अन्य समस्याओं से दूर एक विच्छिन्न व्यक्तित्व ही नजर आता है जो पीड़ित है, दुःखित है, निराश है, पर साथ ही जीने को उत्सुक है क्योंकि उसकी निराशा उसे कभी अगतिमय नहीं बनाती, हर चुभता हुआ कंकड़ पांवों को एक नया बल दे जाता है, हर राह रोकता पत्थर उसको अवसर देता है कि वह अपने निरन्तर आगे बढ़ते रहने के निश्चय को फिर दोहरा ले। इसलिए पीड़ा, निराशा, एकाकीपन उसे अकर्मण्य या निरीह नहीं बनाते। समाज की उपेक्षा उसके आत्म-विश्वास के लिए एक चुनौती बनकर आती है। इस तरह नदी किनारे आकर कवि सिर्फ नदी की बढ़ती बाढ़ और मँझधार से भयभीत नहीं है उसे एक नौका भी मिली हुई है—आत्म-विश्वास की नौका। 'नदी किनारे के' अभिव्यक्ति पक्ष के लिए बहुत कुछ नहीं कहा जा सकता। वह कवि का बाल-प्रयत्न है जिससे प्रौढ़ उम्मीदें करना व्यर्थ है। पर यह कवि के भावी विकास का आभास रूप जरूर है।

नदी किनारे आकर कवि को जो सबसे पहली अनुभूति हुई वह है लहरों के निमन्त्रण की, और इन लहरों की—जीवन गति की पुकार से विवश होकर जो कुछ उसने उस काल में गाया वह उसके 'लहर पुकारे' संग्रह में संग्रहीत है। इसमें १९४४ से १९४६ तक की लिखी कविताएं संग्रहीत हैं। 'नदी किनारे' कवि का प्रवाह की ओर बढ़ता हुआ एक कदम है—एक ऐसा कदम जिसे प्रेम, दृढ़ता और विद्रोह के सहारे उठाया गया है। नदी किनारे के पीड़ित उपेक्षित, एकाकी, असहाय और अल्हड़ मन का 'लहर पुकारे' में पहली-पहली बार प्रेम और जीवन से परिचय होता है। इस संग्रह के कथ्य में नदी किनारे से आगे सिर्फ दो चीजें बढ़ी हैं एक प्रेम और दूसरा समाज और यह

ऐसी उपलब्धियां हैं जिन्होंने किशोर कवि को बलात प्रौढ़ बना दिया है। 'लहर पुकारे' में कई प्रेम गीत संग्रहीत हैं जिनसे उसकी जीवन में आस्था और जीवनेच्छा का ज्ञान होता है। कहीं-कहीं इसमें एकाकीपन और निराशा भी है—काली रातों की अनुभूति अभी मिटी नहीं है क्योंकि प्रेम से अभी तक कवि का मात्र परिचय हुआ है, एकरूपता नहीं। पर प्रेम ने उसे शक्ति दी है जीवन में खड़े रहने की, समाज के कलुष से विद्रोह करने की। इसमें कवि का पूँजीवादी वैभव-सत्ता के प्रति घोर असंतोष भी प्रकट हुआ है। यहीं आकर उसने पहली बार समाज को निरखा-परखा है और उसकी विकृतियों ने उसके अन्तर में क्रांति को जन्म दिया है। 'लहर पुकारे' 'नदी किनारे' के कवि का काफी भिन्न और प्रौढ़ रूपांतर है। सजीव विशेषण, भाव व्यंजक प्रतीक और बिम्ब यहीं से कवि की कला-दक्षता का आभास देने लगते हैं।

नीरज के अगले काव्य संग्रह 'दो गीत' से उनका मृत्युवाद शुरू होता है। इसमें दो लम्बी कविताएँ 'मृत्यु गीत' और 'जीवन गीत' संग्रहीत हैं। मृत्यु-गीत १९४९-५० की रचना है और जीवन गीत १९४५ की। दोनों गीत जीवन के दो छोर हैं एक दूसरे से सर्वथा भिन्न पर शायद यह भिन्नता ही वह सूत्र है जिसने दोनों को एक साथ संग्रहीत करा दिया है। मृत्युगीत दो भिन्न मन-स्थितियों में बैठकर लिखी गई रचना है जिनमें थोड़ा ही अन्तर है। पूर्वार्ध में हाहाकार अधिक है और उत्तरार्द्ध में चिंतन, मानो कवि मृत्यु के खंडहरों में बैठकर मृत्यु की समाजवादी परिभाषा गढ़ रहा है। मृत्युगीत का कवि पूर्णतः मृत्युवादी है। जीवन के कटु-कलुष ने उसे इतना विक्षुब्ध, इतना जर्जर और इतना अनास्थाहीन बना दिया है कि वह मृत्यु को ही सत्य मान बैठा है। प्रकृति में हर ओर उसे अपने सत्य के विघटन का ही दृश्य दिखाई देता है। गुलाब, बुलबुल, साँझ-प्रातः, नदी निर्झर सबकी एक निश्चित नियति मृत्यु ही है। जीवन में सर्वत्र उसके हृदय का ही हाहाकार हर कंठ से फूट रहा है। मृत्युगीत की ईमानदारी उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, वह जीवन की अमरता और प्रेम जन्य सम्बन्धों पर व्यंग्य है। फिर भी मृत्यु-गीत कवि की जीवन यात्रा का एक ऐसा पड़ाव है जहाँ पहुँचकर सन्देह होने लगता है—कारवाँ आगे बढ़ेगा भी या नहीं पर साथ ही गति का गीत अर्थात् जीवन गीत देख कर थोड़ी राहत मिलती है। जीवन गीत में आस्था का स्वर मुखरित है वह

आत्मा की अजेयता का उद्घोषक है। समष्टि में व्यष्टि का लय इसका सबसे सुखद सन्देश है। कुल मिलाकर जीवन एक-दो पृष्ठों की जिन्दगी है जिसका एक पृष्ठ है मृत्यु और दूसरा जीवन, एक है यथार्थ तो दूसरा आदर्श। पर न जाने क्यों मृत्यु की लिखावट ही ज्यादा गहरी और चमकदार है और जीवन उसके सामने काफी फीका लगने लगता है। दो गीत में कवि की जीवन दृष्टि का परिचय भी हो जाता है। मृत्यु-जीवन, सत्य-असत्य, व्यष्टि-समष्टि आदि पर मौलिक चिंतन भी इसमें है। अभिव्यक्ति की दृष्टि से दोनों गीत ही काफी समृद्ध हैं और कवि के भाषाधिकार की सूचना देते चलते हैं।

इस गीत का अगला राग है 'आसावरी', जो १९५८ का प्रकाशन है। इसके अस्पृश्या और दो गद्यगीत क्रमशः १९५४ और १९४८ की रचनाएँ हैं। 'दो गीत' का मृत्युवादी कवि यहाँ आकर फिर जी गया है। जीवन में दुःख और पीड़ा को उसने सहज स्वीकार कर लिया है। व्यक्ति की अनिवार्यता मानकर विवशता से नहीं वरन् जीवन में काँटों-कंकड़ों की उपादेयता को मानकर। इससे उसकी उदात्तता स्पष्ट हुई है परन्तु जीवन में अब भी उसे आस्था कम है, मृत्युवाद की घुटती हुई-सी आवाज यहाँ भी कहीं-कहीं है, इसीलिये प्रेम के क्षणों में भी उसे परिवर्तन की चिन्ता ही अधिक सताती है। मिलन-क्षण में भी 'विदाक्षण' की सुधि उसे भूलती नहीं। इस संग्रह में प्रेम और विरह के सुन्दर गीत संग्रहीत हैं जहाँ कवि प्रेम के उस सोपान पर पहुँचता हुआ-सा दिखाई देता है वहाँ से भक्ति का प्रारम्भ हो जाता है। पीड़ा और विकल वेदना की अनुभूति बड़ी तीव्र, बड़ी गहरी और बड़ी मर्मस्पर्शी है। ससीम व्यक्तित्व की असीमता की अनुभूति भी वह करता है। 'कारवाँ गुजर गया' इस संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि है। यों तो अन्य कविताएँ भी श्रेष्ठ हैं परन्तु अपनी लोकप्रियता के कारण 'कारवाँ गुजर गया' हिन्दी-गीत परम्परा में Mile-stone का काम करता है। इसकी अमरीकन खिलौने जैसी कविताएँ एक नवीनता का बोध कराती हैं। जीवन की एकरूपता, विवशता और अस्तित्वहीनता इसका कथ्य है जो कवि का एक नवीन स्वर है और उसकी नवीन काव्य-चेतना का बोध देता है, ऐसी कविताएं पूर्णतः प्रतीक शैली की हैं। प्रेम और विरह के गीतों की प्रतीक और बिम्ब योजना उत्कृष्ट है। शिल्प की दृष्टि से नीरज के गीतों का यह एक नया मोड़ है।

'आसावरी' की समकालीन रचना है 'विभावरी' (१९५१) जिसका दूसरा संस्करण 'बादर बरस गयो' नाम से प्रकाशित हुआ। आसावरी और विभावरी दोनों लगभग एक ही काव्य की रचनाएं हैं और संयोगवश विभावरी का प्रकाशन बाद में हुआ है पर शिल्प की दृष्टि से मुझे विभावरी अर्थात् 'बादर बरस' गयो 'आसावरी' से अधिक प्रौढ़ लगती है। इसलिए विकास क्रम में मैं उसकी गणना आसावरी के बाद ही करना चाहूंगी। बादर बरस गयो का कवि जीवन के दर्द से परिचित है। नीरज के काव्य में जो एक अजीब दर्द रहता है। उसका स्पष्ट संकेत यहीं से मिलना प्रारम्भ होता है। जीवन के रहस्य से परिचित कवि के गीतों में अजीब टीस, एक मर्मस्पर्शी विकलता जन्म ले लेती है। यहां कवि का अहं इतना प्रबुद्ध है कि प्रेम में भी आत्म-सम्मान की उसे चिन्ता है। उसका आहत अभिमान किसी के सम्मुख नमन करना नहीं जानता इसलिये कभी-कभी निराशा का अंधेरा भी उसके गीतों पर छाया हुआ दिखाई देता है। जीवन में उसकी आस्था आज भी टूट-टूट जाती है। जन्म है यहां मरण त्योहार, कब्र है धरती कफन है आसमान, जैसे गीतों में मृत्युवादी स्वर जीवित सुनाई पड़ता है। जीवन में आस्था के अभाव के कारण कवि कभी-कभी परिवर्तन से भयभीत है पर साथ ही आशा का दीपक भी उसके पथ को आलोकित करता रहता है जिसके प्रकाश में वह जीवन की हर मुश्किल को पारकर मंजिल तक पहुंच जाने का उत्साह और आत्मविश्वास जुटा सका है। संघर्षों से लड़ने की शक्ति उसके आशावाद को जन्म देती है। इस तरह 'बादर बरस गयो' का कवि एक साथ ही कई विकासों की सूचना देता है। कवि का शिल्प-विधान इसमें विशेष समृद्ध है। इस संग्रह से हिन्दी गीतों को एक नई दिशा मिलती प्रतीत होती है।

'प्राणगीत' नीरज के गीतों की सामाजिकता, चिन्तन और मानव प्रेम की ओर बढ़ती हुई एक उन्नतता का आभास रूप है। नीरज के दार्शनिक रूप के यहां पहली बार स्पष्ट दर्शन होते हैं। यह चिन्तनशीलता उनके प्रेम को ऐसे क्षेत्र तक ले आती है जो भक्ति और रहस्य का प्रवेश द्वार है। प्रेम जहां एक ओर गहन होकर रहस्यभाव बन जाता है वहां दूसरी ओर व्यापक होकर मानव प्रेम। नीरज के प्रेम का प्रसार दोनों ओर हुआ है। उनके, कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है, आदमी को प्यार दो आदि गीतों में इसी

चेतना के स्पष्ट दर्शन होते हैं। यहाँ उनका चिन्तनशील व्यक्तित्व भी उभर कर आया है वह मात्र प्रेम तक ही सीमित नहीं है; जीवन की गहनतम दार्शनिक समस्याएँ भी उन्हें उलझाए रखती हैं। इस संग्रह की 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' आदि कविताओं में उनके प्रौढ़ दार्शनिक चिन्तक का रूप स्पष्ट हुआ है। नीरज की सामाजिकता भी यहाँ अधिक मुखर हो फूलों का विद्रोह, जीवन जल, अब युद्ध नहीं होगा, आदि अनेक कविताओं से उसका स्वर सुनाई देता है। 'अब युद्ध नहीं होगा, अपने समय की बेहद लोकप्रिय कविताओं में से एक है जिसने साहित्य जगत पर गहरा प्रभाव डाला और कई कवियों की रचनाएँ इसी परम्परा में लिखी गईं। विश्व-शांति की ओर बढ़ता हुआ नीरज का यह ठोस कदम था जिसमें आस्था, विश्वास और दृढ़ता थी। मृत्युवाद का स्वर—जिन्दगी थक गई मौत चलती रही अब भी कभी-कभी सुनाई दे जाता है पर कुल मिलाकर नीरज की सामाजिकता, विश्व-प्रेम, और जीवन के प्रति आस्था ही पाठक को अधिक प्रभावित करती है। कवि यहाँ जीवन के रहस्य से परिचित है इसी से वह तट पर बैठकर लहरों का खेल ही देखना नहीं चाहता, मँझधार के बीच खुद मिलने को भी वह तैयार है। शिल्प की दृष्टि से यह अत्यन्त प्रौढ़ रचना है और कवि के शिल्पकार रूप का भी स्पष्ट परिचय देती है। बिम्बों एवं प्रतीकों का ऐसा नवीन और भावव्यंजक विन्यास हिन्दी गीतों में भी कम ही मिलता है।

सन् १९५६ में प्रकाशित 'दर्द दिया है' नीरज की सबसे समृद्ध और प्रौढ़ काव्यकृति है। 'दर्द दिया है' का कवि मानव का पुजारी है, वह अब अपने सुनसान को अपनी ही आवाज से भरने के लिए नहीं गाता वरन् दुनिया के घावों पर मरहम लगाने के लिए गाता है—यानि वह घर से निकलकर बिल्कुल चौराहे पर जाकर खड़ा हो गया है—आने-जाने हर राहगीर से नाता जोड़ते हुए, उनकी पीड़ा और दुख बँटाते हुए, जहाँ एक नहीं, दो नहीं, उसके प्यार के हजारों साझी हैं। नीरज का व्यक्ति प्रेम यहाँ मानव प्रेम बन गया है:

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार।
तू ही मिला न मुझे वहाँ मिल गया खड़ा संसार।

दुःख ने उसका परिचय जीवन से करा दिया है। सुख ने उसे अहं की कारा में बंद रखा था पर दुःख ने हर दरवाजा खोल दिया और जीवन का,

मानव मात्र का दुःख-दर्द उसके पास बेरोक-टोक आने लगा। गीतों में यह सामाजिक चेतना उद्जन बम्ब के परीक्षण पर, चालीस करोड़ बेकारों से, आदि से स्पष्ट ध्वनित होती है। प्रगतिवाद के साथ में आकर जो वस्तु मात्र झंडा बन गई थी नीरज ने उसे ही काव्यात्मक परिवेश में सुन्दर से सुन्दर ढंग से उतारा। कवि का व्यक्ति परम प्रेम यहाँ उस स्तर पर है जहाँ वह पार्थिव न रह कर उस असीम और अनन्त के प्रति सहज समर्पण बन जाता है। उनके 'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के, जिसने देखा तुम्हें तुम्हारी ही फिर वह तस्वीर बन गया, ऐसी लगन लगाई—आदि गीतों में प्रेम ऐसे ही गौरवपद पर है। निराशा का स्वर यहाँ समाप्त प्रायः है। कवि को जीवन में आस्था है और है अडिग आत्मविश्वास जिसने उससे— जमाने को खबर कर दो कि नीरज गा रहा है, गर कलम न छीनी गई तो हिन्दोस्तान बदल कर छोड़ूँगा—जैसे आस्था, विश्वास और कुछ अंशों में अहमन्यपूर्ण गीत लिखवा लिये हैं। नीरज की अभिव्यक्ति सम्बन्धी मान्यताएँ भी यहाँ स्पष्ट हो जाती हैं। वे किसी वाद के प्रवर्तक या प्रयोक्ता नहीं बनना चाहते, मानव-प्रेम ही उनके निकट सबसे बड़ा सत्य है जो कविता इसकी गायक है वही सच्चे अर्थों में कविता है—अन्य सब काव्य विधाएँ मात्र कलाबाजियाँ हैं, महज चौंकाने और अभिभूत करने के बौद्धिक प्रयत्न हैं, कविता के सनातन मूल्यों से जिनका कोई निकट का सम्बन्ध नहीं है। अन्ततः शिल्प की दृष्टि से 'दर्द दिया है' अत्यन्त प्रौढ़ रचना है।

'दर्द दिया है' के बाद दो संग्रह आते हैं—एक नीरज की पातियों का और दूसरा उनकी रुबाइयों का। 'नीरज की पाती' में वह अनेक पातियाँ संग्रहीत हैं जो समय-समय पर उन्होंने व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर लिखी थीं। ये पातियाँ कई प्रकार की हैं जिनमें व्यक्तिगत प्रेम से लेकर मानव प्रेम तक है। व्यक्तिगत पातियाँ पत्र रूप हैं जिनमें पत्रात्मक शैली में काव्यात्मकता का संयोजन है। साहित्यिक समस्याओं का विवेचन कल्पना के नाम पाती, गीतकार का जन्म, पुरानी पीढ़ी के नाम निवेदन, समकालीन गीतकार के नाम पाती आदि में है। कालीदास के नाम पाती एक व्यंग्य है। 'कानपुर के नाम पाती' इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक लोकप्रिय पाती है कारण है, उसका अछूता दर्द और बेजोड़ अभिव्यक्ति—टीस और तान का अपूर्व सम्मिलन। प्रथम छः-सात पातियाँ नितांत वैयक्तिक

हैं जो किसी प्रिय को लिखी गई हैं पर उनमें भी अक्सर समाज के विघटन और निर्माण का उल्लेख हो जाता है। प्रेम-पत्रों से इतर पाकिस्तान के नाम पाती, पुर्तगाल के नाम पाती, काश्मीर के नाम पाती, नील की बेटी के नाम पाती, अफ्रीका की रंगभेद नीति के नाम पाती आदि उनकी प्रबुद्ध सामाजिक चेतना का परिणाम हैं। 'साँसों के मुसाफिर के नाम पाती' में उनका मानव प्रेम मुखरित हुआ है। अभिव्यक्ति पक्ष की दृष्टि से सभी पातियाँ अत्यन्त समृद्ध हैं। अपने सहज प्रवाह और गतिमयता के कारण यह अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी हैं। साहित्य जगत में तो नीरज के अनुकरण से पातियों की बाढ़ ही आ गई है। अब हर गीतकार पत्र शैली में ही कविता करता है।

नीरज का दूसरा संग्रह है रुबाइयों का, जो 'मुक्तकी' के नाम से सन् १९६० में प्रकाशित हुआ। इसमें विभिन्न विषयों पर लिखी १०१ रुबाइयाँ हैं। यह रुबाइयाँ कहीं सौन्दर्य का मानदण्ड है, कहीं दर्द का तर्जुमा, कहीं पीड़ा का संदेश, कहीं आँसू की गहराई, कहीं कल्पना की उड़ान, कहीं मानव प्रेम का गीत, तो कहीं समस्याओं का समाधान—यानी अनेकों रूपों में आई हैं। इनमें सामाजिक समस्याएँ हैं, वैयक्तिक समस्याएँ हैं और साहित्यिक समस्याएँ हैं। प्रेम व्यक्ति के प्रति भी है, समाज के प्रति भी और संसार के प्रति भी। यानी नीरज में व्यक्ति का प्रायः हर स्तर यहाँ रुबाइयों की चार पंक्तियों में बँधकर आ गया है। नीरज जी की रुबाइयाँ हिन्दी कविता की नई उपलब्धियाँ हैं। रुबाइयों को उर्दू से हिन्दी में लाने और हिन्दी में रुबाइयों के सैकड़ों लिखने पढ़ने वालों को तैयार करने का श्रेय नीरज जी को ही है। इन दोनों संग्रहों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कवि की नितान्त अपनी काव्य विधाएँ हैं उनकी मौलिकता का जीवन्त प्रमाण हैं।

नीरज की काव्य यात्रा की अब तक की अन्तिम मंजिल है 'गीत भी अगीत भी' (१९६३) जिसके नाम से ही उसकी एक नई काव्य-चेतना का बोध होता है। इसमें कुछ प्रेम गीत संग्रहीत हैं जो शिल्प की उत्कृष्टता के कारण काव्य कला की समृद्धि की घोषणा करते हैं। इन गीतों में संयोग और वियोग दोनों ही प्रकार के गीत हैं। संयोग में सौन्दर्य का ऐन्द्रिजालिक वातावरण है तो विरह गीतों में प्राणों की टीसती और कसकती हुई पीड़ा, जिसने दर्द को एक गीत बना दिया है। 'माँ' को सम्बोधित करके लिखे गये चार गीत कवि

की विशुद्ध रहस्यवादी चेतना के निर्माण हैं, जो सहज ही हमें सन्तों की परम्परा का स्मरण करा देते हैं। आधुनिक युग में ऐसे विशुद्ध प्रतीकात्मक व अन्योपदेशक गीत आज तक नहीं लिखे गये। आधुनिक हिन्दी गीतकाव्य की यह अन्यतम तथा सर्वथा मौलिक उपलब्धियाँ हैं। 'साधो' को सम्बोधित करके लिखे गये गीत भी हमें कबीर की फक्कड़ फकीरों की परम्परा के निकट ले जाते हैं। भाषा और शब्दों का विन्यास कबीर का अटपटापन लिए हुए है। उसमें कवि के निस्पृह चिन्तक रूप के दर्शन होते हैं। गीत भी अगीत में अधिकांशतः कवि के नवीन प्रयोग हैं जो उन्हें उनके पिछले सभी काव्य संग्रहों से काफी दूर ले आते हैं। छन्द मुक्त शैली में लिखी गई सबसे अधिक कविताएँ इसी संग्रह में संग्रहीत है; जिनमें पायदान, खिड़की खुली, अंजलि, द्वैताद्वैत, सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है आदि कविताएँ सफल हैं और कवि की नवीन काव्य चेतना की उद्घोषक हैं। सैनिकों का प्रयाण-गीत, फूल-बाग और गुलदस्ता, 'सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है' आदि चीनी आक्रमण से हुई प्रतिक्रिया का परिणाम हैं जो सामाजिक चेतना का लक्ष्य पूरा करती हैं। 'आदम का लहू' मानव की अजेयता का ऐसा जयघोष है जो नीरज की उदात्तता का उदाहरण है। यह एक ऐसा गीत है जो हर राष्ट्र का है, हर देश का है, हर समाज का है और हर आदमी का है। शिल्प की दृष्टि से यह संग्रह प्रयोगों से भरा हुआ है। कवि नवीनता की खोज शिल्प के स्तर पर कर रहा है और इसलिए नवीन उपमान और प्रतीक देने में सफल भी हुआ है। 'गीत भी अगीत भी' नीरज के एक नये मोड़ का सूचक है।

यह है नीरज की काव्य यात्रा के पथ का विवरण, हर ठाँव उनको देखते परखते हुए। पर नीरज की मंजिल अभी बहुत आगे है और उनका कारवाँ निरन्तर प्रगति पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है—बढ़ता जा रहा है। ये तो उतने ही मुकाम हैं जितने अभी तक छप कर हम तक आये हैं।

प्रथम कृति : 'नदी किनारे'

नीरज की प्रथम कृति 'नदी किनारे' वेदना का सिर्फ एक गीत है जो नये-नये स्वरों में उभर कर बार-बार आता है। वह जीवन की विकृतियों में से उभरा हुआ केवल एक चित्र है जो तरह-तरह की रंग योजनाओं से बार-बार दृश्य-पट पर लाया जाता है, पर उन सभी स्वरों में एक ऐसी एकलयता है, सभी रूपों में रेखाओं का इतना साम्य है कि सहज ही ज्ञान हो जाता है कि वह किसी एक ही गीत के भिन्न स्वर हैं, किसी एक ही चित्र के भिन्न रंग हैं—और वेदना इनका सबसे बड़ा कथ्य है। पर यह वेदना भी बड़ी अल्हड़ और बड़ी अछूती है क्योंकि यह किसी के साथ गुजारी गई रात की वेदना नहीं है, किन्हीं कजरारी आंखों और लाल हथेलियों की वेदना नहीं है—वह इन सबसे अलग, इन सबसे अपरिचित सिर्फ जीवित रहने की वेदना है। आंधियों में उड़ते रहने और कांटों पर चलते रहने की वेदना है। इसमें कवि संघर्परत है अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए, अपनी उद्दाम जीवनी-शक्ति को विश्रृंखलित न होने देने के लिए। यह वेदना उसके अपने एकाकीपन की है। प्राय: गीतों से ऐसा भान होता है मानों कोई पक्षी बारिश में भीगता हुआ अपने नीड़ को बेचैन होकर खोज रहा है। आशाएं नष्ट-भ्रष्ट हैं और जीवन उपेक्षित है :

मुझको जीवन आधार नहीं मिलता है,
आशाओं का संसार नहीं मिलता है।
मधु से पीड़ित, मधुशाला से निर्वासित,
जग से—अपनों से निंदित और उपेक्षित—
जीने योग्य नहीं मेरा जीवन पर, मरने का भी अधिकार नहीं मिलता है।
मुझको जीवन आधार नहीं मिलता है।

इसलिए जीवन में चारों ओर उसे सिर्फ घना अँधेरा और तूफान ही दिखाई देते हैं। उसने बार-बार कहा है—आज आँधी आ रही है, घोर तम अब छा रहा है, आ गई आँधी गगन में, नहीं दिखता तिमिर का छोर। इन गीतों में उसके अन्तर्संघर्ष, जीवन से निरन्तर लड़ते जाने और थकते जाने का ही आभास मिलता है। यह एकाकीपन की पीड़ा जीवन में उसे निराशावादी बना देती है, विश्व में मौन-रुदन ही वह अपने व्यक्ति की नियति मान लेता है। इतना भयभीत है कवि कि आशा की कामना ही अपरिहार्य बन जाती है :

अब नयनों में तम सी काली,
झलक रही मदिरा की लाली,
जीवन की संध्या आई है, मत आशा के दीप जलाओ।
अब तो मुझे न और रुलाओ।

नदी किनारे के कवि का मन इतना एकाकी है कि वह जीवन को उपेक्षणीय समझ लेता है। उसको जीवन से अनेक शिकायतें रही हैं—प्यार न देने की, पीर न पहचानने की। 'उनके जग ने प्यार नहीं पहचाना' आदि गीतों में यही स्वर मुखरित हुआ है। यहाँ कवि जीवन से निराश तो है पर वह निराशा ऐसी विवशता बनकर नहीं आई है कि उसे पलायन के लिए मजबूर कर दे। कवि थका-हारा है पर रुक जाना उसे स्वीकार नहीं है। संघर्ष-पथ पर चलते रहना ही उसकी विवशता है। जीवन की आँधी, अंधकार, बिजली-बादल से घिरी संकरी पगडंडी पर उसके पाँव डगमगाते हैं पर फिर भी चलते रहना ही उसके व्यक्तित्व की नियति है, क्योंकि वह मानता है कि जीवन-समर है, संघर्ष का ही रूपांतर है, जिसमें उसी व्यक्ति की जीत होती है जो अपनी हार स्वीकार नहीं करता :

हार न अपनी मानूँगा मैं।
चाहे पथ में शूल बिछाओ,
चाहे ज्वालामुखी बसाओ
किन्तु मुझे जब जाना ही है,
तलवारों की धारों पर भी हँस कर पैर बढ़ा लूँगा मैं।
हार न अपनी मानूँगा मैं।

उनके जीवन समर, साथी सब सहना पड़ता है, मैंने बस चलना ही सीखा—आदि गीतों में इस संघर्षरत चेतना के दर्शन होते हैं। संघर्ष की इस निष्ठा का ही परिणाम है कि कवि उपेक्षित और एकाकी होकर भी जीवन-जीने की अभिलाषा की उपेक्षा नहीं कर पाया है। जीवन से उसे फिर भी प्यार है, जीवन की उसे फिर भी अभिलाषा है। 'नदी किनारे' के गीतों में आशा की सुनहरी धूप बिखरी नहीं दिखाई देती फिर भी संघर्ष में उसकी निष्ठा देखकर लगता है कि आशा की कहीं कोई किरण थी जरूर, जिसके आलोक में उसे अपनी मंजिल दिखाई तो पड़ती थी। शायद जीवन में अडिग विश्वास, न मिट सकने वाली निष्ठा ही वह सहारा थी जिसका अवलम्ब लेकर वह आँधियों-तूफानों से भरे इस प्रदेश को पार कर गया है। पूरी पुस्तक में कर्त्तव्य और हृदय का संघर्ष है जो भिन्न-भिन्न परिवेशों में सामने आता है।

'नदी किनारे' के समस्त गीत नितान्त वैयक्तिक हैं। कवि अपने सुख-दुःख से ही इतना जीर्ण है और जीवन व समाज के प्रति इतनी शिकायतों से भरा हुआ है कि उसके सुख-दुःख में अपने आपको बिलकुल सम्बद्ध नहीं कर पाया है। इसलिए इस संग्रह के गीत समाज से दूर नितांत उसके अपने हैं पर उसकी पीड़ा यहाँ इतनी तीव्र भी नहीं है कि उसे रहस्यवादी बना दे क्योंकि अभी तक वह प्रेम की पीर से अपरिचित है। इसलिए उसमें वेदना होते हुए भी विरह बिलकुल नहीं है। संयोग के—सुख के बिना परिचय के वियोग—दुःख की अनुभूति भी नहीं हो सकती इसलिए इसमें चुभन, टीस और रहस्य नहीं के बराबर है। इसमें उसके आकुल मन की निरीह पीड़ा ही व्यक्त होती है। निवेदन में उन्होंने स्वयं कहा भी है :

'इसलिए पाठकों ने इस संग्रह में भाषा, छंद, तुक-तान, लय-ध्वनि, बिम्ब अनुबिम्ब, प्रगति-प्रयोग, वाद-विवाद आदि सबसे सर्वथा अनभिज्ञ मेरे किशोर

मन की छटपटाहट के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त होगा—काव्य छल तो बिलकुल ही नहीं। मेरी सर्वप्रथम कृति होने के नाते यह एक प्रकार से मेरे कवि जीवन का आमुख है यानी इस संग्रह में पहली बार घर से बाहर निकलकर मैं नदी किनारे आया हूँ। आया भर हूँ नदी के तल से कुछ बाहर निकालकर ला नहीं पाया हूँ। लेकिन बाहों में लहरों से खेलने की आकुल-उत्सुकता अवश्य है।'

'नदी किनारे' में कवि का हृदय इतना आकुल, जर्जर और खंडित है कि जीवन में प्रत्येक पग पर उसे विध्वंस का मूक अभिनय ही दिखाई पड़ता है। प्रकृति हर जगह उसके विशृंखलित हृदय से सामंजस्य करती प्रतीत होती है। यहाँ प्रकृति का हर रूप आरोपित है। निकला नभ में एक सितारा, नभ में चपला चमकती, पेड़ गिरना चाहता है, फूल डाल से छूट रहा है, टूटता सरि का किनारा आदि सभी में प्रकृति के व्याज से उसकी अपनी व्यथा ही चित्रित हुई है। उसे प्रकृति में भी अपने हृदय का हाहाकार और विध्वंस-नाद सुनाई पड़ता है।

टूटता सरि का किनारा।
सुमन सौरभ, बेल पल्लव
कुसुम कलियाँ, मधुप मधुप
सरित सुबना का सुखद मिट रहा देखो खेल सारा।

'नदी किनारे' की समस्त प्रकृति निराशा के रंगों से रंगी दिखाई पड़ती है। इसलिए प्रकृति वर्णन करने के बावजूद भी नीरज प्रकृति के कवि नहीं प्रतीत होते, वे पीड़ा के ही कवि हैं। 'नदी किनारे' को पढ़कर बार-बार लगता है यह वही कवि है जो वीणा का कवि था, या निशा निमन्त्रण का कवि था, शायद हर कवि का आरम्भ इसी तरह होता है।

निशा निमन्त्रण के कवि बच्चन का इस पर स्पष्ट प्रभाव है और कवि ने स्वयं संग्रह को निशा निमन्त्रण के कवि को समर्पित कर इस बात को स्वीकार कर लिया है। क्यों रुदनमय हो न उसका गान, मैं क्यों प्यार किया करता हूँ आदि को पढ़ते हुए अचानक ही निशा निमन्त्रण, मधुकलश आदि की सुधि

हो जाती है। यहाँ सिर्फ कथ्य की ही समानता नहीं है कवि की अभिव्यक्ति बहुत अंशों में उससे प्रभावित है।

शिल्प की दृष्टि से 'नदी किनारे' के गीतों में कोई नवीनता नहीं है। इसमें सहज, स्वच्छन्द गति प्रवाह है जिसके कारण सहज ही वह आकर्षित कर लेते हैं। भाषा की दृष्टि से वह सहज गतिमय साहित्यिक भाषा के निकट है। किशोर कवि का अनगढ़पन और अटपटापन इनमें जरूर है पर भाव-व्यंजना की पूर्ण सामर्थ्य भी इसमें है; यथा :

मैं रोदन ही गान समझता।
उर-पीड़ा के अभिशापित दल,
जो नयनों में रहते प्रतिपल—
आँसू के दो चार मणकण आज इन्हें वरदान समझता।
मैं रोदन ही गान समझता।

'नदी किनारे' के कवि को शब्दों की नजाकत का उतना परिचय अभी नहीं है जितना उसकी बाद की कृतियों में देखने को मिलता है। उर्दू के द्वारा शब्दों की आत्मा का ज्ञान जो उन्हें बाद में जाकर हुआ है उसका यहाँ अभाव है। शब्दों का माधुर्य कहीं-कहीं समाप्त हो गया है जैसे :

अपनी कितनी परवशता है,
जग से निन्दित पीड़ित होकर,
जीवन में कुछ सार न पाकर,
घूंट हलाहल की कटु पीकर,
जबकि चाहता 'मन' मर जाना,
तभी पकड़ गर्दन कोई कहता, पागल यह कायरता है।

शायद आज नीरज जी स्वयं अपने इन प्रयोगों को पसन्द नहीं करेंगे।

बिम्ब और प्रतीकों की दृष्टि से 'नदी किनारे' पर्याप्त समृद्ध है। नव्यता का आग्रह कवि को नहीं है इसलिए नवीन प्रतीक और बिम्बों की योजना यहाँ नहीं के बराबर है। कवि ने प्रायः प्रचलित प्रतीकों का ही प्रयोग किया है, तम, आँधी, तूफान, मंझधार, दीपक, नौका, खग आदि परिचित साहित्यिक

प्रतीक हैं। यही प्रतीक बार-बार दोहराये गये हैं, ये सभी भाव-व्यंजना करने में पूर्ण समर्थ हैं। खग का प्रतीक तो कवि का प्रिय प्रतीक रहा है। एकाकी संघर्षरत चेतना के लिए कवि इसे बार-बार लाया है :

> खग उड़ते रहना जीवन भर,
> भूल गया है तू अपना पथ,
> ग्रौर नहीं पंखों में भी गति,
> किन्तु लौटना पीछे पथ पर ग्ररे मौत से भी है बदतर।

कहीं-कहीं सहज रूप से नवीन प्रतीक भाव-व्यंजना के लिए प्रयुक्त हो गये हैं, जो ग्रत्यन्त सफल हैं :

> क्या हृदय ग्रभिलाष उसकी ?
> ग्रौर मधु की प्यास उसको,
> ग्रश्रु से ज्योतित फटे जो ग्रांख का सुनसान।
> क्यों रुदनमय हो न उसका गान।

'ग्रांख का सुनसान' ग्रत्यन्त भाव-व्यंजक प्रतीकात्मक बिम्ब है जो कवि में ग्रचेतन से उसकी एकाकी पीड़ा का प्रतीक बनकर ग्राया है। ऐसे ग्रयत्नज प्रयोग ग्रागे के शिल्पकार की पूर्वसूचना देते हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि कवि नवीनता के लिए सचेष्ट नहीं है। इस संग्रह की कविताग्रों का बिम्ब-विधान भी सफल पर परम्परागत है; यथा :

> कहता जग पागल मुझसे पर पागलपन मेरा मधुप्याला,
> ग्रश्रु धार है मेरी मदिरा, उर ज्वाला मेरी मधुशाला,
> इससे जग की मधुशाला का मैं परिहार किया करता हूँ।
> मैं क्यों प्यार किया करता हूँ ?

बिम्ब ग्रौर प्रतीक की दृष्टि से 'नदी किनारे' में नवीनता ग्रवश्य नहीं है पर उसका प्रयोग ग्रौचित्यपूर्ण है इसलिए सफल है ग्रौर कवि के भावी विकास का स्वप्न यहाँ ग्रांख खोलता-सा लगता है।

सब कुछ मिलाकर 'नदी किनारे' कवि के किशोर मन की छटपटाहट का किशोर प्रयत्न है। किसी भी परिपक्वता के दर्शन उसमें नहीं होते। ग्रनुभूतियाँ

सभी किशोर हैं, वेदना भी अल्हड़ है और उसके अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति भी सहज सरल है। अन्ततः यह नीरज कवि जीवन का 'आमुख' है। कवि 'पहली बार ही घर से निकल कर नदी किनारे' तक आया है। 'नदी किनारे' को पढ़कर मुझे ऐसी अनुभूति हुई है जैसे मैं किसी प्रौढ़ दार्शनिक के बचपन का चित्र देख रही हूँ।

नीरज की दार्शनिकता

हैं पढ़े न मैंने मजहब के पोथे मोटे,
संचित न कर सका किसी वाद का तनिक ज्ञान,
मंदिर मस्जिद की ओर न मेरी दृष्टि गई,
काबा काशी का मुझे न आया कभी ध्यान।
संध्या नमाज का राज न अब तक जान सका,
इसलिए वक्त उसमें न किया बर्बाद कभी।
अपने जीवन की सूनी घड़ियों को मैंने,
है किया न तर्क वितर्कों से आबाद कभी।
मैं पढ़ा वही जो मुझे पढ़ाया जीवन ने,
हूँ सीख सका वह गया सिखा जो समय काल,
मैंने बस मानवता को पूजा जीवन में,
बस सदा आदमी के आगे यह झुका भाल।

नीरज की आधार भूमि न कोई विशेष दर्शन ग्रन्थ है, न कोई विशेष सम्प्रदाय। वे केवल मानव प्रेम के गायक हैं। प्रेम और करुणा उनके निकट सबसे बड़े सत्य हैं। उन्होंने जो कुछ भी ज्ञान पाया जिन्दगी की किताब से

पाया, जब जो पढ़ा वही गा दिया। जो कुछ जीवन ने दिया उसी की प्रतिक्रिया उनका काव्य है। इसीलिए उनके काव्य में अक्सर विरोध भी मिल जाता है—कहीं मृत्यु को स्वीकारती अवश उक्ति है तो कहीं कब्र पर बीन बजाती जिन्दगी का जयघोष। इसका कारण है कि वह किसी विशेष सम्प्रदाय का राम नामी दुपट्टा ओढ़ कर जग में नहीं निकले थे जिससे किसी अन्य का असर ही उन पर न होता, वह एक साफ पृष्ठ की तरह जिन्दगी में आये और जीवन जो कुछ उस पृष्ठ पर अंकित करता गया कवि उसे गीतों में रखकर सहेजता गया। इसलिए यदि कविताओं में कहीं विरोध हो तो वह उसके उत्तरदायी नहीं, असंख्य वासनाओं और विडम्बनाओं से भरा यह मानव जीवन ही उसका कारण है।

नीरज के दर्शन का मूल स्वर है प्रेम और अन्य सभी स्वर उसी की वेदना, उसी की पीड़ा से निकले हैं। प्रेम एक मूलभूत अनश्वर तत्व है और जीवन में चारों ओर जो कुछ विस्तार और प्रसार है सब उसी का प्रति रूप है। व्यक्ति प्रेम, देश प्रेम, विश्व प्रेम सब उसी की शाखाएं, प्रशाखाएं हैं। प्रेम का प्रसार अनन्त है। धरती से आकाश तक जो सबको बांधे हुए है वह प्रेम-अर्थात् आकर्षण का ही सूत्र है। यही वह सूत्र है जिससे ग्रह-उपग्रह, बिजली और बादल एक लय में नर्तन करते हैं। संसार में यही प्रेम कभी मकान बन जाता है, कभी महल, तो कभी झोंपड़ी, कभी मन्दिर बन जाता है, कभी मस्जिद, तो कभी गिरजा, कभी प्रान्त बन जाता है, कभी देश, तो कभी विश्व यानी यही संसार में सर्वत्र है। यही जीवन को उसकी गति अर्थात् स्थिति देता है—उसको बंजारा बनने से बचाए रखता है। वह प्रेम ही है जो व्यक्ति के हर टूटे हुए आंसू, हर अधूरे सपने को आवारा और पथभ्रष्ट बनने से बचा लेता है और कहीं न कहीं उसे जीवन की गति-स्वाभाविकता से जोड़े रखता है। 'गीत भी अगीत भी' में नीरज ने कहा है :

प्यार अगर थामता न पथ में उंगली इस बीमार उमर की,
हर पीड़ा वेश्या बन जाती, हर आंसू आवारा होता।
हर घर आंगन रंग मंच हो,
औ हर सांस एक कठपुतली,

प्यार सिर्फ वह डोर कि जिस पर,
नाचे बादल, नाचे बिजली,
तुम चाहे विश्वास न लाओ, लेकिन मैं तो यही कहूँगा।
प्यार न होता धरती पर तो, सारा जग बंजारा होता।

उनकी दृष्टि में संसार की सबसे बड़ी उपलब्धि, सबसे बड़ा ज्ञान, सबसे बड़ी समृद्धि सिर्फ प्रेम ही है। प्रेम ही वह विशेषता है जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है अन्यथा वह तो निरा पशु ही है। प्रेम ही मनुष्य में देवत्व और पवित्रता की प्रतिष्ठा करता है :

प्यार है कि सभ्यता सजी खड़ी,
प्यार है कि वासना बंधी पड़ी,
प्यार है कि आँख में शरम जड़ी,
प्यार बिन मनुष्य दुश्चरित्र है,
प्यार तो सदैव ही पवित्र है।

नीरज के दर्शन में आत्मा के साथी (Soul mate) की कल्पना नवीनतम है। उनकी कल्पना है कि सृष्टि का हर तत्व अपूर्ण है और हर अपूर्ण अपने पूरक अंश अर्थात् (Soul mate) की खोज में घूम रहा है और इसी खोज का नाम जीवन है। जब तक हमको अपना यह आत्मा का साथी मिल नहीं जाता, तब तक जीवन में खोज जारी है। यह खोज, यह भटकन ही जीवन की गति है, यह एक जीवन की ही गति नहीं, आत्मा की गतिमयता का प्रमाण है। इसी से आवागमन का चक्र भी चलता है। यह उस अपूर्ण की अपूर्ण के लिए खोज है जो हर बार एक नया जीवन, नया परिवेश लेकर आता है :

भेष भाये न जाने तुझे कौन सा,
इसलिए रोज कपड़े बदलता रहा,
किस जगह कब कहाँ हाथ तू थाम ले,
इसलिए रोज गिरता संभलता रहा।

जब तक उस आत्मा के साथी से भेंट नहीं होती तब तक जीवन में अतृप्ति है, हर ओर कोई कमी महसूस होती है :

हर जगह जिन्दगी में लगी कुछ कमी,
हर हँसी आँसुओं में नहाई मिली,
हर समय हर घड़ी भूमि से स्वर्ग तक,
आग कोई दहकती रही उम्र भर।
एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के,
साँस मेरी सिसकती रही उम्र भर।

और अपने इस आत्मा के साथी से भेंट कर लेना ही मुक्ति है। पर जब तक मुक्ति नहीं तब तक जीवन में अतृप्ति है, निराशा है, आँसू है, विकलता है और जीवन की खोज जारी है।

नीरज जी की मान्यता है कि सृष्टि का आरम्भ एक अद्वैत तत्व से हुआ है। सृष्टि को प्रकृति और पुरुष का निर्माण मानने के आधार पर इस तत्व को अर्धनारीश्वर कहा जा सकता है। यही एक तत्व क्रीड़ा के लिए अथवा लीला के लिए एक से दो हुआ, दो से चार, चार से आठ और इस तरह सृष्टि का प्रसारण होता चला गया। एक से बहुत तो हो गये पर मूलभूत जो एक था वह खंड होता चला गया यानी आदि में जो पूर्ण था निरंतर खंडित होकर वह अपूर्ण होता चला गया और यह अपूर्ण निरंतर अपने पूरक की खोज में रत है इसी प्रकार जीवन गतिमान है—अपूर्ण की अपने इस पूरक तत्व-आत्मा के साथी की खोज का नाम ही जीवन है। अपनी पुस्तक 'प्राणगीत' की भूमिका में नीरज ने अपने दृष्टिकोण को इस प्रकार स्पष्ट किया है :

'सारे धर्म ग्रन्थों ने स्वीकार किया है कि इस विश्व का उद्भव एक तत्व से हुआ है। लेकिन यह किस प्रकार सम्भव है ? प्रकृति और पुरुष के संयोग का नाम सृष्टि है। दो के बिना जन्म कहाँ ? तो मानना पड़ता है कि वह आदि तत्व जिससे इस विश्व की रचना हुई है एक होकर दो था। हमारे यहाँ उसे अर्द्धनारीश्वर कहा गया है। × × × × उस अर्द्धनारीश्वर (एक तत्व) ने प्रेम के लिए या कहिये सृष्टि प्रसारण के लिए, केलि के लिए, क्रीड़ा के लिए अपने को दो में विभाजित किया (अद्वैत ने द्वैत को जन्म दिया) दो के बाद चार और चार के बाद आठ और इस तरह सृष्टि बन गई। परन्तु आदि तत्व के विभाजन (Division) से संसार में बहुत बड़ी ट्रेजिडी हो गई कि प्रत्येक चेतन तत्व एक अपूर्ण आत्मा हो गया। फलस्वरूप उसके हृदय में

प्यास है, भूख ही अपने उस आत्मा के साथी के लिए, जिसको प्राप्त करने के लिए उसे बार-बार मिट्टी के ये कपड़े बदलने पड़ते हैं।

नाश के इस नगर में तुम्हीं एक थे,
खोजता मैं जिसे आ गया था यहाँ,
तुम न होते अगर तो मुझे क्या पता,
तन भटकता कहाँ मन भटकता कहाँ,
वह तुम्हीं हो कि जिसके लिए आज तक,
मैं सिसकता रहा शब्द में गान में,
वह तुम्हीं हो कि जिसके बिना शव बना,
मैं भटकता रहा रोज श्मशान में।

'बस आत्मा के साथी के लिए जो प्रत्येक चेतन तत्व में प्यास है और चाह है, उसी का नाम प्रेम है और यह प्यास जब तक तृप्ति नहीं बनेगी तब तक उस मन के मीत से आत्म सम्बन्ध स्थापित नहीं होगा। यह आवागमन का चक्र भी तब तक चलता रहेगा, जब तक वह नहीं मिलेगा। जिस दिन वह मिल जायेगा उसी दिन मुक्ति हो जायगी।' (प्राणगीत)

सृष्टि में सब ओर यही अतृप्ति, आत्मा के साथी को पाने के लिए बिकलता दिखाई देती है। सृष्टि के हर कण का एक पूरक तत्व मौजूद है वही उसकी सार्थकता है। व्यक्ति की सार्थकता भी उसका वही आत्मा का साथी है, जिसकी उसे तलाश है—

बाँसुरी से बिछुड़ जो गया स्वर उसे,
भर लिया कंठ में शून्य आकाश ने,
डाल विधवा हुई जो कि पतझार में,
माँग उसकी भरी मुग्ध मधुमास ने,
हो गया कूल नाराज जिस नाव से,
पा गई प्यार वह एक मँझधार का,
बुझ गया जो दिया भोर में दीन सा,
बन गया रात सम्राट अँधियार का,
जो सुबह रंक था शाम राजा हुआ,
जो लुटा आज कल फिर बसा भी वही,

एक मैं ही जिसके चरण से धरा,
रोज तिल-तिल घसकती रही उम्रभर।

वस्तुतः प्रेम ही वह धुरी है जिस पर सारा संसार चक्राकार घूमता है और आत्मा के साथी की खोज ही वह विकलता है जो व्यक्ति का सबसे बड़ा वरदान है, जिसके कारण वह गतिमय है, विकल है, जीवित है। वह एक मंजिल है जो उसे सदैव चलते रहने को विवश करती है :

एक ही कील पर घूमती है धरा,
एक ही डोर से बस बंधा है गगन,
एक ही सांस में जिन्दगी कैद है,
एक ही तार से बुन गया है कफन,
इस तरह हर किसी के नयन में यहाँ
एक ऐसी बसी शक्ल खामोश है,
प्यार संसार भर का मिले क्यों न पर
आदमी को न उसके बिना होश है।

यही नहीं सृष्टि का हर अपूर्ण तत्व पूर्णत्व की खोज में व्याकुल है। अपने आत्मा के साथी की खोज सबको विकल बनाये हुए है। इसीलिए सर्वत्र गति है—खोज है, अतृप्ति है :

दीप को अपना बनाने को पतंगा जल रहा है,
बूँद बनने को समुन्दर की हिमालय गल रहा है,
प्यार पाने को धरा का मेघ है व्याकुल गगन में
चूमने को मृत्यु निशदिन श्वासपंथी चल रहा है।

जब तक सृष्टि है तब तक आत्मा के साथी की यह खोज भी जीवित है। जीवन में हर ठाँव, हर घाट, हर गली व्यक्ति अपने इस साथी के लिए विकल है, पर वह उसे पा नहीं सका, हर धर्म, हर मजहब, हर राग, हर विराग में उसने उसको खोजा पर आज तक अतृप्त ही रहा, प्रेम ही इस खोज में उसका अवलम्ब, उसकी राह का दीपक बना है। सिर्फ प्रेम ही वह बैसाखी है जिसके सहारे अधूरी, अपूर्ण आत्मा जीवन की दौड़ में संलग्न है :

खोजता ही फिरा पर अभी तक मुझे,
मिल सका कुछ न तेरा ठिकाना कहीं,
ज्ञान से बात की तो कहा बुद्धि ने,
सत्य हो वह मगर आजमाना नहीं,

धर्म के पास पहुँचा पता यह चला,
मन्दिरों मस्जिदों में अभी बन्द है,
जोगियों ने बताया कि जप जोग है,
भोगियों ने कहा भोग आनन्द है,

किन्तु पूछा गया नाम जब प्रेम से,
धूल से वह लिपट फूट कर रो पड़ा,
बस तभी से व्यथा देख संसार की,
आँख मेरी छलकती रही उम्रभर।

प्रेम के द्वारा ही व्यक्ति अहं का विसर्जन कर सकता है। आँसुओं और प्रेम के द्वारा ही उस आत्मा के साथी की अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। यह प्रेम ही व्यक्ति को ससीम से असीम बनाकर, हर दीवार ढहाकर मैदान में लाकर खड़ा कर देता है, जहाँ से विश्वप्रेम का उदय होता है। यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि से आत्मा का तादात्म्य स्थापित हो जाता है। यह अहं का समर्पण और उत्थान प्रेम के द्वारा ही सम्भव है। समस्त संसार से एकात्म होकर ही हम अपने उस आत्मा के साथी की अनुभूति पा सकते हैं। अक्सर ऐसा ही हुआ भी है कि व्यक्ति से पहले विश्व आ खड़ा हुआ है :

चिंतन आया था मेरे ढिग तुझको मुझे दिखाने,
लेकिन जितने रूप दिखे सब थे अनबूझ अजाने,
लिया जोग ने जोग पता देने को मुझको तेरा,
किंतु स्वयं ही भूल गया वह अपने ठौर ठिकाने,
छिपा कहाँ तू जबतक खोजूँ मैं इस बड़े नगर में
तब तक मेरे कान पड़ गया जग का हाहाकार,
और तभी से लगा बाँटने मैं दुनिया में प्यार,
कोई आये, कोई जाये, है सबका सत्कार।

यहाँ आकर कवि का व्यक्ति प्रेम विश्व प्रेम में परिणत हो जाता है। विश्व ही नीरज के प्रेम का अथ है व वही इति। उनका प्रेम व्यक्ति से प्रारम्भ होकर विश्व में लय हो जाता है। और वह गाने लगता है :

एक चांद के बगैर सारी रात स्याह है,
एक फूल के बिना चमन सभी तबाह है,
जिन्दगी तो खुद ही एक आह है, कराह है,
प्यार भी न जो मिले तो जीना फिर गुनाह है,
आदमी के दर्द, दाह, पीर से
जो घृणा करे उसे बिसार दो,
प्यार करे उसपे दिल निसार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो।

नीरज के प्रेम के साथ-साथ उनके सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझ लेना भी अत्यन्त आवश्यक है। सौन्दर्य का अर्थ उनकी दृष्टि में ही संतुलन (Harmony) क्रम (Order) आकर्षण (Gravitation or Attraction) स्थिति कारण (Force of existence), और सब मिलाकर चिति शक्ति है। सन्तुलन और क्रम वस्तुपरक सौन्दर्य के मानदण्ड हैं, संतुलन अथवा अनुपात ही सौन्दर्य है। जीवन भी इसी क्रम और संतुलन से निर्मित और गतिमय है। सौन्दर्य अर्थात् आकर्षण अथवा चितिशक्ति जिसके कारण ही संसार गतिमान है, स्थित है यानी कि जीवन चल रहा है। पर जिस सौन्दर्य का यह समन्वय, जीवन में भौतिक तत्वों का आनुपातिक संतुलन समाप्त हो जाता है, उसी दिन मृत्यु हो जाती है। नीरज जी भी कहते हैं :

सूरज से प्राण धरा से पाया है शरीर,
ऋण लिया वायु से है हमने इन श्वासों का,
सागर ने दान किया है आंसू का प्रवाह,
नभ ने सूनापन विकल विधुर उच्छ्वासों का।

सृष्टि में सर्वत्र ही यह गति अथवा क्रम दिखाई देता है, सूर्य, चन्द्र, ग्रह उपग्रह सभी इस क्रम में सदियों से घूम रहे हैं। सृष्टि की समस्त गति

का कारण यह चिति शक्ति अर्थात् आकर्षण ही है। प्रेम का आकर्षण ही वह शक्ति है जिससे जीवन गतिमान है :

एक दिन बैठा समुन्दर तीर पर,
सुन रहा था बुलबुले की मैं कथा,
एक कागज की किसी कश्ती तभी,
थी खड़ी जिसमें पहाड़ों की व्यथा,
बोझ इतना घर, मुझे अचरज हुआ,
चल रही है किस तरह यह धार में,
हँस कहा उसने चलाती चाह है,
आदमी चलता नहीं संसार में।

जीवन में यह प्रेम अथवा आकर्षण या चाह ही है जिसके द्वारा समस्त सृष्टि एक सूत्र में बंधी घूमती है। नीरज ने इसके लिए कहा है : हाँ, तो मैं सौन्दर्य को सृष्टि की स्थिति का कारण चित शक्ति मानता हूँ। जिस दिन सौन्दर्य इस मिट्टी को स्पर्श करता है उसी दिन चेतना (प्राण अथवा ताप) का जन्म होता है। यह एक विज्ञान सम्मत सत्य है कि दो वस्तुओं के स्पर्श या संघर्ष से ताप (Heat) की उत्पत्ति होती है। यही ताप आकर्षण, सौन्दर्य अथवा प्रेम है। सौन्दर्य और प्रेम के द्वारा सृष्टि का उद्भव और विकास किस प्रकार होता है, इसको नीरज ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

एक ऐसी हँसी हँस पड़ी धूल यह,
लाश इन्सान की मुस्कराने लगी,
तान ऐसी किसी ने कहीं छेड़ दी,
आँख रोती हुई गीत गाने लगी,
एक नाजुक किरन छू गई इस तरह
खुद ब खुद प्राण का दीप जलने लगा
एक आवाज आई किसी ओर से,
हर मुसाफिर बिना पाँव चलने लगा,
रूप के गाँव का पर मिला छोर यूँ
देह बढ़ती रही उम्र ढलती रही।

जीवन में प्रेम अथवा सौन्दर्य ही वह शक्ति है जो जीवन को गति देती है। उन्होंने कहा है :

परस तुम्हारा प्राण बन गया, दरस तुम्हारा श्वास बन गया।
युग-युग से निर्जीव शिला सी, लेटी थी मिट्टी की काया।
पथराई थी चपल पुतलियां, ओठों पर हिम था चढ़ आया।
लेकिन उस दिन धड़कन बन छू गया हृदय जब प्यार तुम्हारा
विरह विलख कर अश्रु बन गया, मिलन विहँसकर हास बन गया।

उनके मत में यही सृष्टि की गति का मूल कारण है।

नीरज के दर्शन का दूसरा प्रमुख स्वर है पीड़ा अथवा दुःख। प्रेम के बाद उनके काव्य में सबसे व्यापक स्थान इसी दुःख, करुणा, पीड़ा अथवा वेदना को मिला है। यह पीड़ा काव्य की अमूल्य निधि है। उनकी कविता की मर्मस्पर्शिता का कारण भी उनकी यही पीड़ा की अनुभूति है। उन्होंने स्वयं 'दर्द दिया है' कि भूमिका में कहा है :

"मेरे विचार से अनुभूति का अर्थ है उष्णता (ताप यानी वेदना)। उष्णता (ताप) ही जीवन है। प्रेम की गहराई ताप की अधिकता या न्यूनता से ही नापी जाती है। काव्य में जो मर्मस्पर्शिता होती है उसकी जन्मदात्री भी यही उष्णता या वेदना है। यदि वह नहीं है तो कविता उपदेश भले ही हो कविता नहीं कही जा सकती। ×××× मेरी कविताओं में इसी वेदना (उष्णता) की सहज स्वीकृति है, कुछ लोगों के विचार से यह नैराश्य प्रसूत है, पर मेरे अपने अनुभव से यह अपनी काव्य-वस्तु के प्रति मेरी निश्छल एवं ऐकान्तिक तन्मयता के कारण ही है। इसे आप यदि मेरी कविताओं में से निकाल देंगे तो मेरी उमर आधी रह जायेगी। मैं ही क्या संसार में जितने महान कवि हुए हैं उनकी रचनाओं से यदि आप उनकी 'वेदना' को बहिष्कृत कर दें तो फिर शायद आप ही उन्हें पढ़ना पसन्द नहीं करेंगे।"

(दर्द दिया है)

नीरज के काव्य में सर्वत्र ही इस वेदना अर्थात् पीड़ा का स्वर ही अनेक स्वरों में गूंजता प्रतीत होता है। उन्होंने स्पष्ट कहा भी है :

'मैं पीड़ा का राजकुँवर हूँ',

या

'पीड़ा मेरी राधा रानी, मन मेरा बनवारी।

व्यक्तिगत पीड़ा से लेकर विश्व तक की पीड़ा उनके काव्य का कथ्य है। व्यक्तिगत स्तर पर वह पीड़ा प्रेम के लिए विकलता बन जाती है या कभी सघन और गहरी होकर अनन्त की अनुभूति देने लगती है और समष्टिगत स्तर पर यह विश्व के लिए अपार प्रेम में परिणत हो जाती है और प्रायः उन्नति, विकास और सुधार के प्रयत्नों के कारण समाजवाद के बहुत निकट पहुँच जाती है। व्यक्तिगत पीड़ा की अभिव्यक्ति उनके प्रेम गीतों में हुई है जिनमें अधिकांश विरह गीत हैं, पीड़ा ही जिनका प्राण है, मिलन अथवा सुख ने यदाकदा ही कवि को आकर्षित किया है और ये गीत पीड़ा के अभाव के कारण उतने मर्मस्पर्शी भी नहीं हो सके हैं। उनके प्रेम गीतों में पीड़ा या वेदना ही प्रधान है। प्रायः गीतों में ऐसी तन्मयता, ऐसा निश्छल समर्पण है कि वैदेही पीड़ा ही स्वर-स्वर से मूर्तित होकर भक्ति बन जाती है। जैसे :

तुझ से लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई,
साँस साँस बन गई सुमिरनी,
मृग छाला सबकी सब धरिणी,
क्या गंगा, कैसी वैतरिणी,
भेद न कुछ कर पाई,
बहाई बनी इकाई।

और जब यह व्यक्ति विश्व में लय हो जाता है तब भी कवि को विनघट, पीड़ा और वेदना का ही तांडव, आँधी अंधड़ का ही वात्याचक्र ही सर्वत्र घूमता दिखाई देता है। जहाँ वह हर बहते आँसू की उमर बढ़ाना चाहता है, हर निष्कासित सौन्दर्य को दर्पण दिखाना चाहता है, हर कब्र में सोये सपने को नव निर्माण बना देना चाहता है :

मैं देख रहा हूँ भूख उग रही है गलियों बाजारों में
मैं देख रहा हूँ ढूँढ रही बेकारी कफन मजारों में,
मैं देख रहा हूँ कला बन गई है तिजोरियों की चाभी,
मैं देख रहा इतिहास कैद है चांदी की दीवारों में।
मैं देख रहा हूँ दूध उगलने वाली धरती प्यासी है,
मैं देख रहा हर दरवाजे पर छायी मौत, उदासी है।
मैं देख रहा मुट्ठी भर दाने पर बिकता सिंदूर खड़ा
मैं देख रहा हर सुबह सूर्य के घर में ही सन्यासी है।
खुद मिट जाऊँगा या यह सब सामान बदल कर छोड़ूँगा
इन्सान है क्या मैं दुनिया का भगवान बदल कर छोड़ूँगा।

नीरज की पीड़ा की यह स्वीकृति इतनी व्यापक है कि सर्वत्र ही पीड़ा का साम्राज्य उन्हें दृष्टिगत होता है। इससे प्रायः उनमें बुद्ध के दुःखवाद की छाया भी मिल जाती है। हर ओर पीड़ा और दुःख की अनुभूति उन्हें हर ओर मौन, क्रंदन यानी मृत्यु की स्वीकृति देने के लिए विवश कर देती है। उन्होंने कहा है—

धूल का आधार हर उपवन किये,
मृत्यु से शृङ्गार हर जीवन किये,
जो अमर है वह न धरती पर रहा,
मृत्यु का ही भार मिट्टी ने सहा।

उन्होंने जीवन की चरम परिणति दुःख को ही माना है, जीवन का हर सौन्दर्य, हर स्वप्न, हर विश्वास-मात्र समाप्त होने, टूटने और बिखरने के लिए है—

गीले सब रुमाल, अश्रु की,
पनिहारिन हर एक नजर थी,
शबनम की बूँदों तक पर
निर्दयी धूप की कड़ी नजर थी,
निरवंशी थे स्वप्न, दर्द से
मुक्त न था कोई भी आँचल,

कुछ के चोट लगी बाहर थी,
कुछ के चोट लगी भीतर थी।

जीवन का हर सुख, सुख से प्रारम्भ होकर दुःख पर समाप्त होता है, दुःख ही व्यक्ति की निश्चित नियति है इसलिए हर मिलन क्षण विदा क्षण में बदल जाता है। हर ज्ञान, धर्म, सौन्दर्य, रूप, धन—सबकी यही एक नियति है। आसावरी में उन्होंने कहा है—

सबने खींचातानी की, आनाकानी की,
अपनी अपनी कमजोरी की अगवानी की,
पर जब तक पहुँचे प्यास तृप्ति के दरवाजे
तब तक प्याले का अमृत गरल बन आ पहुँचा।

जब तक कुछ अपनी कहूँ, सुनूँ जग के मन की।
तब तक ले डोली द्वारा विदा क्षण आ पहुँचा।

जीवन के अन्त में मात्र पीड़ा ही शेष रह जाती है। इसी कारण, पीड़ा, वेदना और दुःख के बोझ से दबकर कवि मृत्यु को ही अन्तिम सत्य मान लेता है, वही व्यक्ति की चरम गति है। जीवन मात्र स्वप्न है, एक छोटी सी हलचल है, जिसका अंत परम शांति, परम अगति अर्थात मृत्यु है। वर्तमान, और भविष्य सब भूत के पूर्व रूप हैं।

'आज', आज का वर्तमान, कल का अतीत है,
और भविष्यत् सिर्फ भूत का मूक गीत है,
आता बनकर जन्म, मरण बन जाता हर पल,
बस चुटकी भर खाक जिन्दगी भर की हलचल।

इसीलिए उनको मृत्यु ही अंतिम सत्य प्रतीत होता है। जीवन निर्माण में हम विभिन्न भौतिक तत्वों से श्वास-प्रश्वास का ऋण लेते है और मृत्यु के ब्याज से हम अपने इसी ऋण को अदा करते हैं—

हाट मिट्टी ने लगाकार साँस की,
रात दिन बेचा खरीदा प्राण को,

उम्र भर की मगर यह सौदागरी,
बस कफ़न ही दे सकी इन्सान को,
देह का हकदार मरघट बन गया,
छीन कर उछ्वास भागा पवन,
आग सारी मोल ले ली सूर्य ने,
बन अभावों का गया गाहक गगन,
अश्रु वे जिनका न दाम चुका कहीं।
हर निशा भरती रही, आ हर ऊषा चुनती रही।
फूल की सारी कहानी धूल से,
सांझ जो कहती रही वह सब सुबह सुनती रही।

जीवन में दुःख, मृत्यु और पीड़ा की अतिशयता से वह जीवन को अनिश्चित—'बिन पाटी की खाटी' मानते हैं। जीवन में जिन्दगी तो कभी निश्चित नहीं है, निश्चित है तो सिर्फ एक चीज और वह है मृत्यु। जीवन समय के सूप में रखा अनाज का दाना है जिसका किसी भी समय उससे गिर कर बिखर जाना है—

यह सितारों से जड़ा नीलम नगर,
बस तमाशा ही सुबह की धूप का,
यह बड़ा सा मुस्कराता चन्द्रमा,
एक दाना ही समय के सूप का।

× × × ×

है अनिश्चित हर दिवस, हर एक क्षण,
सिर्फ निश्चित है अनिश्चितता यहाँ,
इसलिये सम्भव बहुत है प्राण! कल
चाँद आये चाँदनी लाए न लाए।

इसलिए जीवन को वह कभी मेले के रूपक से व्यक्त करते हैं तो कभी शतरंज के खेल से, जीवन इतना बहुरूप, इतना ही आकर्षण, इतना ही अनिश्चित है पर उसकी एक निश्चित नियति है और वह निश्चित नियति है

मृत्यु, मौन, दुःख, विरह। × × × ×'जो सर्वं खल्विदं ब्रह्म और एकमेवो द्वितीयो नास्ति— के दार्शनिक सिद्धांतो से प्रभावित है।

नीरज के दर्शन का अगला रूप है उनका प्रतिविम्बवाद। × ×नीरज ईश्वर को किसी मंदिर मस्जिद की सीमा के भीतर बद्ध नहीं मानते सृष्टि का हर कण उसकी आभा से ओत-प्रोत है। वह न तो बादलों से ऊपर किसी कल्पित स्वर्ग का निवासी; न मंदिर, मस्जिद, गिरजे, या अन्य समाजों का अधिष्ठाता, वह हर गली, हर गाँव में जीवित है। उनका ईश्वर व्यक्ति से ऊपर कोई अपर कल्पना नहीं है वरन् वह व्यक्ति ही है जो देवत्व पाकर उस पद पर पहुँच जाता है। इसीसे उनका ईश्वर हर घट, हर दर्पण में अपना रूप दिखाता है—

हर दर्पन तेरा दर्पन हो, हर चितवन तेरी चितवन हो,
मैं किसी नयन का नीर बनूँ, तुझको ही अर्घ्य चढ़ाता हूँ।

तपसिन कुटिया, बैरिन बगिया, निर्धन खंडहर धनवान महल,
शौकीन सड़क, गमगीन गली, टेढ़े मेढ़े गढ़, गेह सरल,
रोते दर, हँसती दीवारें, नीची छत, ऊँची मीनारें,
मरघट की बूढ़ी नीरवता, मेलों की क्वारी चहल पहल,
हर देहरी तेरी देहरी है, हर खिड़की तेरी खिड़की है,
मैं किसी भवन को नमन करूँ, तुमको ही शीश झुकाता हूँ।

यही नहीं सृष्टि का हर कण ही उसका प्रतिबिम्ब है। मानव मात्र तक ही वह सीमित नहीं है वरन् इस समस्त दृश्यमान जगत में जो कुछ भी हमारे व्यक्तित्व की सीमाओं को छूता है जिसको हम अनुभूत करते हैं सब उसी का आभास देते हैं। सृष्टि की हर वस्तु उसी का प्रतिरूप है। सूर्य उसी की आग से जलता है, चंद्र उसी की झांकी देखने भर से आजतक ओस रूप में आँसू ढालता है अर्थात् सारी सृष्टि उसी के संकेत पर चलायमान है। सृष्टि की गति भी उसी के कारण है—

किसने तुम्हें बुलाया जो मरघट से लौट पड़ा जग सारा,
कौन तिराई तिरी कि खुद ही मिलने को चल पड़ा किनारा,

क्रीड़ा की वह कौन सृष्टि के आंगन में उस दिन जो छिन में,
पदरज झर कर धरा बन गई, अम्बर उड़कर चीर बन गया।

परन्तु प्रतिबिम्बवाद के दार्शनिक सिद्धांत से पूर्ण रूप से उसी तरह सहमत नहीं है। वह संसार को मात्र परमात्मा की छाया अथवा उसका प्रतिबिम्ब ही बनाते वह स्वयं परमात्मा को ही उसमें निहित देखते हैं। उनके दर्शन में व्यक्ति और ब्रह्म एक ही हैं। और ईश्वर प्रेम विश्व प्रेम में लय हो जाता है। और प्रायः ऐसा हुआ है कि ईश्वर की जगह स्वयं व्यक्ति आकर खड़ा हो गया है—

युग युग से मैं बना रहा था मूर्ति तुम्हारी अकल-अलेखी
आज हुई पूरी तो मैंने शक्ल खड़ी अपनी ही देखी
लेकिन इससे भी बढ़कर अपराध कर गई पूजन बेला,
तुम्हें सजाने चला फूल जो मेरा ही शृङ्गार हो गया।

उनके दर्शन पर अरविंद, जे० कृष्णमूर्ति आदि के दार्शनिक सिद्धांतों की छाया भी कहीं दिखाई पड़ती है कृष्णमूर्ति की तरह उनका भी विचार कि जीवन का सत्य स्वयं ही अनचीन्हे क्षणों में प्राप्त हो जाता है, व्यक्ति स्वयं अपने उस सत्य से अनभिज्ञ रहता है—

उसकी अनगिन बूंदों में है स्वाति बूंद कौन?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं।

किस एक गांठ से गांठ जुड़ी है जीवन की?
हर जीवित से ज्यादा यह प्रश्न पुराना है।
कौन सी जलन जलकर सूरज बन जाती है
बुझकर भी दीपक ने यह भेद न जाना है।

परिचय करना तो है बस मिट्टी का सुभाव,
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बनकर
इसीलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में
जब चला गया मेहमान गया पहचाना है।

कहीं कहीं उन पर अलवेयर कामू का प्रभाव भी दिखाई देता है और कहीं जैन दर्शन के अनेकांतवाद का प्रभाव भी है पर वह अधिक नहीं है।

अन्त में नीरज के दर्शन के लिए कहा जा सकता है कि वह एक ऐसे व्यक्ति का दर्शन है जिसने जीवन को हर स्तर पर खूब भोगा है, मानसिक, दैहिक और आत्मिक सभी स्तर पर उन्होंने सहन किया है और उनकी इन Sufferings ने उन्हें वह बनाया है जो वे हैं। वे न पूर्णतः प्रगतिवादी हैं, न समाजवादी, न वे अरविंद के प्रतिरूप है, न बुद्ध के, न वे सार्त्रे के स्वर में बोलते है न कामू के, न वह एरिस्ट्रोफिन के चिन्तन के व्याख्या है न हेलेनिक दर्शन के। उनके मन पर इन सबका कुछ न कुछ अचेतन प्रभाव तो पड़ा है पर वह सबसे मिल एक अलग व्यक्तित्व है। उनका दर्शन उनके जीवन का दर्शन है, जिसकी सबसे बड़ी उपलब्धियां हैं प्रेम, सौन्दर्य, करुणा और विश्वबंधुत्व। उनके दर्शन की ये ही मूल विधाएँ हैं जो किसी किताब, किसी सम्प्रदाय से नहीं आई, कवि ने उन्हें जीवन की किताब से खुद पढ़ा है।

नीरज के प्रतीक और बिम्ब

किसी भी कवि के प्रतीक और बिम्ब उसकी कला के एकान्त परिचायक हैं। उसकी कला की श्रेष्ठता का मान-दण्ड ही उसकी कल्पना और उसकी कल्पना का सबसे बड़ा प्रमाण है—प्रतीक और बिम्ब। आधुनिक युग में जैसे-जैसे कला का विकास होता जा रहा है बिम्ब और प्रतीक का क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है। एजरा पाउण्ड (Ezra Pound) का तो कहना है---जीवन में केवल एक सशक्त बिम्ब का निर्माण करना अनेक ग्रन्थों के प्रणयन से अधिक अच्छा है। (It is better to present one image in a life-time than to produce voluminous works. Make it new) पर एजरा पाउण्ड के कथन का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि बिम्ब का अर्थ बिम्बवाद हो अर्थात् जो उस सम्प्रदाय में दीक्षित हो केवल वही बिम्ब निर्माण कर सकता है। वस्तुतः बिम्ब और प्रतीक काव्य के सार्वभौम तत्व हैं जो हर देश, हर काल के श्रेष्ठ साहित्य के मानदण्ड हैं, उनका कोई दल नहीं, कोई गुट नहीं, कोई सम्प्रदाय नहीं। वह तुलसी के सौन्दर्य-बोध के मूर्त्तरूप भी हो सकते हैं और रवीन्द्र के आत्मा-परमात्मा विषयक दर्शन के प्रतिनिधि, भी वह छायावादियों के ललित-कोमल स्वप्न भी हो सकते हैं और नये कवियों का नारा भी। पर उनकी सीमा न सौन्दर्य-बोध है, न दर्शन, न स्वप्न और न नारा, वह शाश्वत मूल्य हैं जो हर काव्य में कवि के जाने-अनजाने यानी चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के प्रयत्नों से जन्म ले सकते हैं, क्योंकि बिम्ब मानव-मात्र की मूल प्रवृत्ति है। विको ने कहा था—"कविता मानव मन की पहली प्रक्रिया है। मनुष्य स्वभावतः व्यापक नियमों तक पहुँचने से पूर्व काल्पनिक चित्रों का सृजन करता है, यथार्थ को स्पष्टतः प्रतिबिम्बित करने से पूर्व वह अपनी उलझी और अस्पष्ट चेतना से वस्तु का ग्रहण करता है। इससे पूर्व कि वह स्पष्ट उच्चारण करे वह कुछ अस्पष्ट ध्वनियों और संकेतों से काम लेता है। इससे पूर्व कि वह

गद्य बोले, निसर्गत: उससे कविता का सृजन होता है। इससे पूर्व कि वह पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करे, वह रूपकों (बिम्बों) का प्रयोग करता है और रूपकों का प्रयोग उसके लिए अत्यन्त स्वाभाविक है।" (Poetry is the primary activity of the human mind. Man, before, he has arrived at the stage of forming universals, forms imaginary ideas. Before he reflects with a clear mind, he apprehends with faculties confused and disturbed : before he can articulate, he sings : before speaking in prose, he speaks in verse : before using technical terms, he uses metaphors ; and the metaphorical use of words is as natural to him as that which we call 'natural'.—Poetic Image)

बिम्ब और प्रतीक दोनों ही कल्पना के निर्माण हैं और कल्पना की उत्कृष्टता के प्रमाण भी। बिम्ब को स्पष्ट करते हुए कवि कॉलरिज ने कहा था : "बिम्ब किसी संवेदना की अनुकृति, कोई भाव, कोई मानसिक घटना, कोई अलंकार या वस्तुओं की तुलनात्मक इकाई तक हो सकता है, केवल उसमें किसी तथ्य को प्रस्तुत करने की सामर्थ्य होनी चाहिए।" (An image may be, for example a visual image, a copy of sensation or it may be an idea, an event in mind, which presents something, or it may be a figure of speech, a double unit envolving comparision.—Coleridge on Imagination) परन्तु प्रतीक इससे सर्वथा विपरीत और भिन्न है। वह संवेदना की अनुकृति या तथ्य को प्रकाशित करने की प्रणाली नहीं है वरन् वह अपने सम्बन्ध सूत्रों द्वारा वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है उसी तरह जैसे फूल बाग का, किरन सूर्य का, तारिका रात्रि का। विश्व-कोष में कहा गया है : "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए होता है जो मस्तिष्क के सम्मुख किसी अप्रस्तुत की सादृश्यता को अपने सम्बन्ध-सूत्रों द्वारा प्रस्तुत करती है।" (The term symbol is given to visible objects representing to the mind the resemblance of something which is not shown but realized by association

within.) इस प्रकार एक ही उत्स से जन्म लेने के बाद भी प्रतीक और बिम्ब में पर्याप्त अन्तर है। प्रतीक जातीय चेतना के निर्माण हैं जबकि बिम्ब नितान्त वैयक्तिक भी हो सकते हैं। वस्तुतः प्रतीक बिम्ब के आगामी सोपान हैं। "प्रतीक की सृजना सम्भव नहीं, उनका आविष्कार होता है अर्थात् जो पदार्थ है उसी को खोज निकाला जाता है।" (काव्य और कला)

कवि प्रतिभा का विकास बिम्ब से प्रतीक की ओर होता है। प्रारम्भिक रचनाओं में जो उपकरण बिम्ब बनकर आते हैं कालान्तर में वही प्रतीक रूप में प्रयुक्त होने लगते हैं। अर्थात् पहले वह संदर्भमय होते हैं पर कालान्तर में मात्र एक उपकरण के उल्लेख से रागात्मक सम्बन्ध होने के कारण हम समग्र संदर्भ को ग्रहण कर लेते हैं। वस्तुतः किसी भी कवि की बाद की रचनाओं में प्रतीक या प्रतीकात्मक बिम्ब ही अधिक होते हैं। यही कवि की प्रतिभा के विकास के सूचक हैं।

नीरज जी यद्यपि बिम्बवादी या प्रतीकवादी नारे बाजी से सर्वथा मुक्त रहे हैं परन्तु उनका काव्य प्रतीक और बिम्बों की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। उनकी काव्य-कला समय के साथ विकसित और प्रौढ़ होती गई है। यहां हम विकास क्रम के संदर्भ में उनकी कृतियों के बिम्बों एवं प्रतीकों का विवेचन करेंगे।

नीरज के काव्य का आमुख है उनका प्रथम संग्रह 'नदी किनारे'। 'नदी किनारे' कवि का किशोर प्रयत्न है और उसी के अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति भी किशोर है। कवि का व्याकुल और पीड़ित हृदय यहां जीवन और प्रकृति के समस्त दृश्यों, समस्त उपकरणों से अपना सादृश्य खोजता घूम रहा है और सबसे प्रथम सादृश्य मिला है। डाली में उलझे एकाकी फूल से। फलतः प्रथम कविता ही रूपक के रूप में प्रस्तुत हुई है :

> निर्जन की नीरव डाली का मैं फूल,
> कल अधरों में मुस्कान लिए आया था,
> मन में अगणित अरमान लिए आया था,
> पर आज झर गया खिलने से पहले ही,

जग से कुछ मन की कहने से पहले ही,
साथी हैं बस तन से लिपटे दो शूल।

'नदी किनारे' के कवि का आग्रह अभिव्यक्ति की नवीनता के लिए नहीं है। प्रायः वह पुराने स्वरों में अपना गीत गाने लगता है। 'नदी किनारे' के अधिकांश बिम्ब परम्परागत है। दीपक पक्षी, लहर, नाव, मझधार, सागर आदि के बिम्ब हमारे पूर्व परिचित हैं और हमारी विशिष्ट भावनाओं के प्रतीक रूप में स्थिर भी हो चुके हैं। 'नदी किनारे' के प्रतीक भी परम्परागत हैं। तिमिर से निराशा, मधु से प्रसन्नता, विष से कटुता, आंधी से संघर्ष, फूल से वैयक्तिक कोमलता आदि की व्यंजना ही यहां अधिक है जिसमें नव्यता नगण्य है। दीपक यहां बार-बार संघर्षरत व्यक्तित्व का प्रतीक बनकर आया है :

अब दीपक बुझने वाला है
प्राणों की वर्तिका बनाकर
जलता रहा प्रणय से लड़कर
केवल स्नेह सुधा के बलपर
लेकिन कब तक जल पायेगा स्नेह खतम होने वाला है।

कहीं-कहीं कवि नवीन बिम्बों को लाने का प्रयास भी करता दिखाई देता है। उसने यहां लाक्षणिक प्रयोग भी किये हैं जिनसे मूर्त्तता तो आई ही है साथ ही इस लक्ष्य की छाया भी मिलती है जो उसे शिल्पकार की श्रेष्ठता पर ले जाती है। इसी प्रकार का नवीन लाक्षणिक प्रयोग है यह बिम्ब—

क्या हृदय अभिलाष उसकी,
क्या मधु की प्यास उसको,
अश्रु से ज्योतित करे जो आंख का सुनसान।
क्यों रुदनमय हो न उसका गान।

यहां 'आंख का सुनसान' ऐसा लाक्षणिक प्रयोग है जो मूर्त्त तो है ही, भाव की अतल गहराइयों का भी दर्शन करा देता है। कालान्तर में हुए कवि के विकास का यही आदि है।

'नदी किनारे' से आगे 'लहर पुकारे' के बिम्बों में भी कवि की यही प्रवृत्तियाँ प्रधान हैं। रचनाकाल में भी थोड़ा-सा ही अन्तर है। आँधियाँ, बिजलियाँ, तूफानों के प्रतीक इस कृति में भी उसके हृदय को संघर्ष और हाहाकार का आभास दे जाते हैं। खग का प्रतीकात्मक बिम्ब यहाँ भी उसी प्रकार प्रयुक्त हुआ है। प्रतीकात्मक बिम्बों का प्रयोग यहाँ अधिक हो गया है। बिजलियों, आँधियों के साथ-साथ मेघ का पूरा रूपक भी आया है।

सदा आँधियाँ और बिजलियाँ
करती हैं इस पर नर्तन,
यहाँ मेघ की क्षुद्र बूँद सा
बन जाता जग का जीवन।

'तुम और मैं' कविता में बहुत से नये बिम्ब आये हैं। प्रिय और प्रेमी की अनेक हिलती-डुलती मूर्तियाँ, अनेकों रंग-बिरंगी तस्वीरें कवि की विकल्पना (Fancy) से निर्मित हुई हैं पर बहुधा वह छायावादी छाया में बैठकर गढ़ी गई सी लगती हैं। कतिपय नये निर्माण भी हैं जो कवि की जीवन-दृष्टि की सूक्ष्मता, ग्राह्यता के संयोग से हुए हैं। इनमें 'रेगिस्तानी प्यास', 'रेतीला गान', 'उर अरमान की लाशों का जनाजा' बड़े मर्मस्पर्शी और सहज ग्राह्य हैं। इसमें स्पर्श, दृष्टि और श्रवण सभी प्रकार की इन्द्रिय सम्बन्धी संवेदनाओं का सम्मिलन हो गया है। ऐसे बिम्ब हमें भावों की उन गहराइयों में ले जाते है जहाँ सहज ही झाँक पाना असम्भव है। (Such memories may have symbolic value but of what we can't tell for they come to represent the depth of feeling into, which we cannot pear.)—(T. S. Eliot : The Uses of Poetry and Criticism)

'दो गीत' का कवि भी बिम्ब और प्रतीकों की इसी परम्परा का कवि है। इसमें अवश्य ही कुछ अछूते प्रतीक आये हैं पर वह अधिक नहीं हैं। 'मृत्यु-गीत' अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न है उसके पास 'तुतले अरमानों', 'वैधव्य समान करवटें लेता विषाद', 'क्वांरी साधों' की पूँजी है पर 'जीवन गीत' में प्रदर्शन के नाम पर प्रायः वही छायावाद का जाना-पहचाना सामान रखा है। इसलिए

कला-पक्ष की दृष्टि से 'जीवन गीत' अधिक आकर्षित नहीं करता। 'मृत्यु गीत' में कई बिम्ब बड़े नवीन हैं। जीवनी की मिटती हुई आस्था और विश्वासों का दृश्य रूप इस सर्वथा नवीन बिम्ब में प्रस्तुत हुआ है :—

> अब चाहूँ भी तो मैं रुक सकता नहीं दोस्त
> कारण खुद मंजिल ही डिग बढ़ती आती है
> मैं जितना पैर टिकाने की कोशिश करता
> उतनी ही मिट्टी और धसकती आती है।

इसी प्रकार जीवन, मरण और आत्मा की नश्वरता के दार्शनिक सिद्धान्तों को सर्वथा नवीन और सहज बिम्बों में प्रस्तुत करके प्रेषणीय बनाया गया है :

> मैं समझ नहीं पाया हूँ अब तक यह रहस्य
> मरने से क्यों सारी दुनिया घबराती है।
> क्यों मरघट का सूनापन चीखा करता है
> जब मिट्टी मिट्टी से निज ब्याह रचाती है।
> फिर मिट्टी तो मिटती भी नहीं कभी भाई
> वह सिर्फ शक्ल की चोली बदला करती है
> संगीत बदलता नहीं किसी भी सरगम का
> केवल गायक की बोली बदला करती है।

'आसावरी' से नीरज का कला-पक्ष प्रौढ़ और अत्यन्त समृद्ध हो जाता है। 'आसावरी' में अनेक लाक्षणिक प्रयोग, मानवीकरण, प्रतीकात्मक बिम्ब एवं प्रतीक हैं। विशेषणों का औचित्य यहाँ दर्शनीय है। अरूप को रूपायित करने में यहाँ के बिम्ब बेजोड़ हैं। कहीं यहाँ मेलों की 'क्वाँरी चहल पहल' है, कहीं 'गीतों वाली गोरी ऊषा', कहीं 'मुखियों वाली काली संध्या' कहीं 'गीत गाती क्वाँरी श्वास' हैं कहीं 'धुँआ ओढ़कर जाते हुए दिये', तो कहीं क्षण-क्षण दरार पड़ती तन की दीवार है। यह सभी प्रयोग सर्वथा नवीन हैं और अत्यन्त सफल हैं। अनेक प्रतीकार्थ व्यंजक रूपक भी हैं ; जैसे—

> कुछ ऐसी लूट मची जीवन चौराहे पर
> खुद को ही खुद लूटने लगा हर सौदागर

औ' जब तक कोई आये हमको समझाए
तब तक ब्याज चुकाने महाजन आ पहुँचा।

यह समग्र रूपक संघर्षरत जीवन और अचानक आये मृत्यु के निमन्त्रण का पूरा चित्र प्रस्तुत करता है। जीवन भी इसी तरह लड़ाई-झगड़े से भरा चौराहा है जहाँ हर ओर लूट-मार, नोच-खसोट है और जहाँ अचानक ही मृत्यु महाजन आकर सबको दण्डित करता है। 'आसावरी' में इसी प्रकार रूपकों के द्वारा प्रतीकार्थ व्यंजित करने की प्रणाली अक्सर अपनाई गई है। 'कारवाँ गुजर गया', विदा क्षण आ पहुँचा', 'कोई मोती गूँथ सुहागिन' आदि कविताओं में यही शैली है। इन कविताओं में मानवीकरण और प्रतीकों को साथ-साथ लाया गया है :

बाग है यह हर तरह की वायु का इसमें गमन है
एक मलयज की वधू तो एक आँधी की बहन है।
यह नहीं मुमकिन कि मधुऋतु देख तू पतझर न देखे
कीमती कितनी कि चादर हो पड़ी सब पर शिकन है।

यहाँ बाग, वायु, मधु-ऋतु, 'पतझर, चादर, शिकन सभी प्रतीक हैं जिनसे जीवन के सुख-दुःख, सौन्दर्य और जीवन की विडम्बना व्यंजित की गई है। यह सभी प्रतीक और बिम्ब सहज हैं और जीवन के रागात्मक पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण सहज ही ग्राह्य हो जाते हैं। लुईस ने कहा था कि बिम्ब बाह्य जगत से हमारे सम्बन्ध स्थापित कराते हैं। (Poetic image is the human mind claiming kindship with every thing that lives or had lived and making good his claim.—Poetic Image) नीरज के बिम्ब भी जीवन से हमारा सह-सम्बन्ध स्थापित करने के कारण विशेष ग्राह्य और सफल हैं। जीवन से टूटकर कोई भी प्रतीक या बिम्ब जीवित नहीं रह सकता।

'बादर बरस गयो' के प्रतीक भी प्रतीक की सभी विशेषताओं से सम्बद्ध हैं। यहाँ जीवन के साधारण व्यापारों को प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यिक और वैयक्तिक सभी प्रकार की समस्यायें इन प्रतीकात्मक बिम्बों के माध्यम से स्पष्ट हुई हैं। 'बादर बरस गयो' के पहले ही

गीत में बहार के माध्यम से जीवन में सुख की समृद्धि और दुःख के एकाकीपन की व्यंजना की गई है—

जब तक रही बहार उमर की बगिया में
जो भी आया द्वार चांद लेकर आया।
पर जिस दिन झर गई गुलाबों की पंखरी
मेरा आँसू मुझ तक आते शरमाया।
जिसने चाहा मेरे फूलों को चाहा,
नहीं किसी ने लेकिन शूलों को चाहा,
मेला साथ दिखाने वाले मिले बहुत
सूनापन बहलाने वाला नहीं मिला।

यह पूरी कविता एक प्रतीक है जिसमें भिन्न-भिन्न प्राकृतिक व्यापारों से जीवन की विषमता की व्यंजना की गई है। बहार, चांद, गुलाबों की पंखुरी, फूल, शूल, मेला आदि सभी प्रतीक हैं। इसी प्रकार 'आ गई थी याद तब किस शाप की' कविता की प्रतीक योजना है। इसका हर बिम्ब अपना प्रतीकार्थ रखता है :

ले नयन में कामना का तृप्ति जल,
डाल मुख पर प्रीति का घूँघट नवल,
साज सपनों की सुहागिन चूनरी
रंग महावर से मुखर पायल चपल
जब पिया घर रूप की दुल्हन चली—मुस्कराई मांग रोई कंचुकी।
आ गई थी याद तब किस शाप की।

यहां जीवन की विडम्बना ही कथ्य है। जीवन के प्रत्येक व्यापार में एक सुख है तो एक दुःख—इसी तत्व की व्यंजना यहां की गई है। इसी प्रकार 'व्यंग्य यह निष्ठुर समय का, तब याद किसी की आती है—के बिम्ब भी प्रतीक रूप में अपना महत्व रखते हैं। परम्परागत बिम्बों को भी नये संदर्भों में रखकर नवीनता की सृष्टि की गई है। ऐसे प्रतीक और बिम्ब भाव बोध में अपूर्व सहायक हैं। लाक्षणिक प्रयोगों और बिम्बों में यहां अनेक नवीन प्रयोग दृष्टिगत

होते हैं। 'घुँघरू सी गमक उठी सूनी सन्ध्या', 'मुस्कानों का मेला', 'बदली सी आँखें', 'जुगनू से जलती-बुझती इच्छायें', 'घायल आँसू', 'लाज भरी क्वांरी सी निशी', 'गूँगी चाह' आदि अनेक नये आरोपित रूप दृश्यता का प्रतिपादन करते हैं। पौराणिक कथाओं को भी यहां नये अर्थों में प्रतीकवत् प्रयुक्त किया गया है।

जब बहार के दिन अपने थे बोली तब न कोयलिया
जब वृन्दावन तड़प रहा था आया तब न सांवलिया।
बिलख-बिलख मर गई जब विकल विरह की राधा
नयन-यमुन-तट प्राण! मिलन का रास रचाना व्यर्थ है।

प्राण-गीत के प्रतीकों की शैली अपने चरमोत्कर्ष में दिखाई देती है और इस कारण यह नीरज की श्रेष्ठ रचनाओं में गिनी जा सकती है। उत्कृष्ट कला का मानदण्ड यीट्स ने प्रतीकात्मक को ही माना था। उसने कहा था: True art is expressive and symbolic and makes every form, every sound, every colour, every gesture a signature of some analysable essence. यहां नीरज की प्रतीकात्मक भी उस स्तर तक पहुंच गई है जहां कविता उस एक अनन्त का आभास देने लगती है। व्यक्ति का प्रेम भी जहां दिव्य हो जाता है; जैसे—

खोजने जब चला मैं तुम्हें विश्व में
मंदिरों ने बहुत कुछ भुलावा दिया।
खैर पर यह हुई उम्र की दौड़ में
ख्याल मैंने न कुछ पत्थरों का किया,
पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण
बांह डाली कली ने गले में मचल
एक तस्वीर तेरी लिए किंतु मैं
साफ दामन बचाकर गया हो निकल।

यहां जीवन के धार्मिक, भौतिक तथा अन्य-आकर्षणों को मन्दिर, पत्थर, पर्वत, कली आदि से व्यंजित किया गया है। इस कविता का प्रत्येक छन्द एक स्वतन्त्र प्रतीकात्मक बिम्ब है। इसी प्रकार की प्रतीक-योजना 'इस तरह तय हुआ

साँस का यह सफर', 'जिन्दगी थक गई मौत चलती रही', 'फूल की कहानी धूल से' आदि कविताओं में भी हुई है। वहाँ भिन्न-भिन्न प्राकृतिक व्यापार प्रतीकार्थ के सूत्र से सम्बद्ध हैं और भिन्न-भिन्न स्वर होते हुए भी केवल एक राग का निर्माण करते हैं। यहाँ नवीन लाक्षणिक प्रयोग भी अत्यधिक हैं। 'प्यासे गीत', 'रेगिस्तानी नजर', 'घायल काजल', 'आवारा अरमान', 'विधवा

बारी' आदि अनेक भावव्यंजक प्रयोग यहाँ हैं। छोटे से छोटे बिम्बों में गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों की व्यंजना की गई है :

जन्म रोया,
मृत्यु हँसी
आयु लुटी,
धूल बसी,
यूँ ही, यूँ ही बस मनुष्य छल गया।

जीवन की क्षणिकता इसका काव्य है जो जन्म-मृत्यु के मानवी आरोप के द्वारा व्यंजित हुआ है।

'दर्द दिया है' शिल्प और भाव दोनों की दृष्टि से कवि की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें अनेक नवीन प्रतीक और बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ बिम्बों के द्वारा प्रतीकार्थ व्यंजित करने की प्रणाली भी बहुधा अपनाई गई है। प्रत्येक बिम्ब यहाँ अन्यार्थ की व्यंजना करता है। कभी वह राजनीतिक समस्याओं के प्रतिरूप बन जाते हैं, तो कभी मानवीय सुख-दुःख के, कभी वह व्यक्ति के प्रतिनिधि हैं तो कभी समाज के। जैसे—

अँधियारा जिसको शरमाए
उजियारा जिसको ललचाए
ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।

इतने छलको प्रभु, थके हर
राहगीर के चरण धो सकूँ
इतना निर्धन करो कि हर
दरवाजे पर सर्वस्व खो सकूँ

ऐसी पीर भरो प्राणों में
नींद न आये जनम-जनम तक
इतनी सुध बुध हरो कि
साँवरिया खुद बाँसुरिया बन जाये।

यहाँ मानव-प्रेम का आदर्श भिन्न-भिन्न रूपों में व्यक्त हुआ है। व्यक्तिगत सुख-दुःख भी प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुए हैं :

मेरे जीवन का सुख दुःख की दुनियां में
बचपन बन आया यौवन बन चला गया।

बचपन और यौवन यहाँ जीवन के सुख की क्षणिकता के प्रतीक हैं। इसी प्रकार वैयक्तिक पीड़ा को बिम्बों और प्रतीकों की अपूर्वता के कारण रहस्यमय अर्थात् अनन्त के लिए पीड़ा का रूप दिया गया है। 'एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण' के गीत में इसी प्रकार के बिम्ब हैं :

बाँसुरी से बिछुड़ जो गया स्वर उसे
भर लिया कंठ में शून्य आकाश ने
डाल विधवा हुई जो कि पतझार में
माँग उसकी भरी मुग्ध मधुमास में

हो गया कूल नाराज जिस नाव से
पा गई प्यार वह एक मंझधार का
बुझ गया जो दिया भोर में दीन सा
बन गया रात सम्राट अंधियार का।

जो सुबह रंक था शाम राजा हुआ
जो लुटा आज कल फिर बसा भी वही
एक मैं ही कि जिसके चरण से धरा
रोज तिलतिल खसकती रही उम्र भर।

यहाँ प्रत्येक बिम्ब पीड़ा को रूपायित कर जीवन की विवशता, एकाकीपन और पीड़ा को स्वीकारने की एक अवश उक्ति बन आता है और पीड़ा को

तीव्रतम अनुभूति उसमें रहस्य की सृष्टि करती है। इसी प्रकार जीवन में सत्य की उपलब्धि किन अज्ञात क्षणों में हो जाती है, जिससे मानव जीवन अनभिज्ञ है के दार्शनिक सिद्धान्त को बादल और स्वाति बूंद के व्याज से कहा गया है :

उसकी अनगिन बूंदों में स्वाति बूंद कौन ?
यह बात स्वयं बादल को भी मालूम नहीं !
किस एक सांस से गांठ जुड़ी है जीवन की ?
हर जीवित से ज्यादा यह प्रश्न पुराना है,
कौन-सी जलन जलकर सूरज बन जाती है,
बुझकर भी दीपक ने यह भेद न जाना है।

परिचय करना तो है बस मिट्टी का सुभाव,
चेतना रही है सदा अपरिचित ही बनकर,
इसलिए हुआ है अक्सर ही ऐसा जग में,
जब चला गया मेहमान गया पहचाना है।

यह प्रतीक गणित या ज्यामित शास्त्र के चिह्नों की तरह निश्चित नहीं हैं विभिन्न संदर्भों में यह विभिन्न अर्थ दे सकते हैं। नीरज के मानव-प्रेम का संदेश भी बिम्ब और प्रतीक द्वारा मुखरित हुआ है :

इस गांव एक काशी उस गांव एक काबा,
इसका इधर बुलावा, उसका उधर बुलावा,
इससे भी प्यार मुझको, उससे भी प्यार मुझको,
किसको गले लगाऊं, किससे करूं दिखावा,
घर जात क्यों बनाऊं, दीवार क्यों उठाऊं,
हर घाट जल पिया है गागर बदल-बदलकर।
इस द्वार क्यों न जाऊं, उस द्वार क्यों न जाऊं
घर पा गया तुम्हारा मैं घर बदल-बदलकर।

यहां 'काशी', 'काबा', 'दीवार', 'घाट', 'गागर' आदि सब धर्म, जाति आदि के प्रतीक हैं। 'हर घाट जल पीना' मुहावरे को भी यहां प्रतीकवत प्रस्तुत किया गया है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त की यह नवीन मानववादी व्याख्या है जो

मार्क्स के वर्ग-जाति-हीन समाज सिद्धान्त के सन्दर्भ में की गई है। जीवन की नश्वरता के सिद्धान्त को भी बिम्बों के माध्यम से प्रकट किया गया है :

ठीक क्या किस वक्त उठ जाये कदम
काफिला कर कूँच दे इस ग्राम से
कौन जाने कब मिटाने को थकन
जा सुबह माँगे उजाला शाम से,
काल के अद्भुत अधरों पर धरी
जिन्दगी यह बांसुरी है चाम की
क्या पता कल श्वास के स्वरकार को
साज यह आवाज यह भाये न भाये।

कवि का विश्व-प्रेम, उसकी समाज चेतना भी बिम्बों में प्रस्फुटित हुई है। 'उद्‌जन बम्ब के परीक्षण पर' कवि को विनाश की ओर कदम बढ़ाते मानव-जीवन की चिन्ता है। विनाश का ताण्डव नृत्य अब उसे असह्य है। नागासाकी हिरोशिमा ही नहीं विनष्ट होती हुई मानवता, समाप्त होता हुआ निर्माण, बाजारों में बिकता हुआ नारीत्व सब उसकी चेतना को झंकृत कर जाते हैं बिम्ब रूप में अपनी इस विकलता को कवि ने इस प्रकार व्यंजित किया है :

धुँधलाए फिर न कभी रोशनी चिरागों की,
मुरझाए फिर न कभी मिट्टी की शहजादी,
कजलाए फिर न कभी नभ नागासाकी की,
कुम्हलाए फिर न कभी हिरोशिमा की वादी।
फिर हवा कराहे नहीं घाव नासूरों से,
फिर महामारी अब खून न चूसे गलियों का,
फिर फूलों की फसलों में फैले नहीं जहर,
फिर पथ पर जाकर बिके न कुंकुम कलियों का।

इस तरह 'दर्द दिया है' के सभी बिम्ब कला की उत्कृष्टता, कल्पना की समृद्धि के प्रमाण हैं।

नीरज की पाती शिल्प का सजीव गुलदस्ता है जिसे व्यंजना, प्रतीक, ध्वनि, उपमान और बिम्ब आदि अनेक शिल्प-विधाओं से तैयार किया गया है। इसकी सुगन्ध इतनी व्यापक इतनी आकर्षक है कि सहज ही अनुभूति में रम जाती है। यह सभी पातियां हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं इसका कारण है इनकी बिम्ब व प्रतीकों से परिपूर्ण प्रभावशाली और सहज प्रेषणीय अभिव्यक्ति। सभी प्रकार के इन्द्रिय सम्बन्धी बिम्ब यहां प्राप्त हो जाते हैं। बिम्बों में मानवीकरण की प्रवृत्ति बहुत अधिक है। कानपुर की पाती का उदाहरण द्रष्टव्य है :

करती टाइप किसी आफिस की किसी टेबिल पर
आज भी बैठी कहीं होगी थकावट मेरी।
खोई खोई सी परेशान किसी उलझन में,
किसी फाइल पै झुकी होगी लिखावट मेरी।

× × × ×

आज भी उसके खतावार छलके आवारा
मेरे पैरों से लिपटने के लिए फिरते हैं
आज भी उसकी सिसकती हुई दीवारों से
टूटे सपने मेरे चूने की तरह झरते हैं।

× × × ×

आज भी उसके झरोखों पै झुकी जमुहाती
मेरी [illegible] सुबह [illegible] रही होगी लेक्चर,
[illegible] के किसी खाने को
मेरे गुजरे [illegible] की [illegible] होगी खबर।

नीरज की लोकप्रियता का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि उनके सारे बिम्ब जीवन के सहज व्यवहार, सहज उपकरण हैं। उन्हें बुद्धि के बल पर दृश्य या मूर्त बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह हमारे रोजमर्रा के व्यवहार के जीवन से उनका सहज रागात्मक सम्बन्ध है जिसके कारण वह अन्तस पर सहज ही अंकित हो जाते हैं। साथ ही मानवीकरण की प्रवृत्ति जो हर अरूप

भाव को रूपायित कर देती है, उनकी सफलता का एक मुख्य कारण है। पातियों में अनेक नवीन बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं :

> तुम न आईं और मेरे फूल से सुन्दर सपने
> एक निर्धन की उम्मीदों की तरह टूट गये
> घर में दो चार जो मेहमान थे अरमानों के
> किसी बेवा की जवानी की तरह रूठ गये।

मानवीकरण तो यहां हर भाव का है। 'कल्पना के नाम पाती' में यथार्थ को मानवी रूप दिया गया है :

> मेरे यथार्थ आ तू कुरूप ही सही मगर,
> तुझमें से जीवन की तो आहट आती है
> तेरे तन पर रेशम न सही, टाट ही सही,
> पर थकी सांस छांह तो वहां पा जाती है।

बहुमूल्य मानव-जीवन के बेमोल बिक जाने का पश्चाताप भी बिम्ब में ही प्रकट हुआ है। वेद यहां जीवन की श्रेष्ठता का प्रतीक है और जिल्द बाह्य साज-सज्जा का—लौ, स्याही, धुंआ, काजल आदि भी प्रतीक हैं—

> कांपती लौ, यह सियाही, यह धुंआ, यह काजल
> उम्र सब अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी,
> कौन समझे मेरी आंखों की नमी का मतलब
> जिंदगी वेद थी पर जिल्द बंधाने में कटी।

'नीरज की पाती' में शिल्प का उत्कृष्ट वैभव सर्वत्र है। सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को भी बिम्ब में मूर्त किया गया है। पाकिस्तान के नाम पाती में वसन्त के ब्याज से एशिया के स्वतन्त्र होते हुए देशों को चित्रित किया है और 'नील की बेटी' के नाम पाती में उपनिवेशवाद के विरुद्ध आवाज उठाई गई है। सर्वत्र ही बिम्बों और प्रतीकों का सफल प्रयोग हुआ है। 'मुक्तकी' में भी शिल्पकार का उच्च स्तर प्रकट हुआ है। उसमें विषय अनेक हैं और इस कारण बिम्बहीन और बिम्बपूर्ण दोनों प्रकार की रुबाइयां इसमें संग्रहीत हैं। अनेकों दार्शनिक और सामाजिक समस्यायें इसमें हैं जो अनेक

प्रतीकों से व्यक्त की गई है। वस्तु और तत्त्व अर्थात् बाह्याकार और अन्तर के गुणों को डोली व दुल्हिन के प्रतीक से व्यक्त किया गया है :

चमन को देख तो फिर सिर्फ फूल पात न देख
यानि पहचान खिलाड़ी को बस बिसात न देख
मेरी डोली की गरीबी पै ओ हँसने वाले,
मेरी दुल्हिन को देख लौटती बारात न देख।

इसी प्रकार हर आडम्बर का मूल कितना कुत्सित, हर वैभव के महल की नींव कितनी पोली है, इसको इस बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। चादर हर जीवन का प्रतीक है :

रात काली इसलिए दिन में गुराई है
साफ है जल क्योंकि तट के पास काई है
यूँ न इतराओ सफेदी देखकर अपनी
हर धुली चादर गुनाहों की कमाई है।

नीरज की रुबाइयों की अभिव्यक्ति अपने ढंग की नई व अनोखी है इसी से उनकी रुबाइयाँ इतनी प्रसिद्ध हैं। और इसका बहुत बड़ा श्रेय है गूढ़ भाव को रूप द्वारा सहज ही ग्राह्य बना देने की बिम्बात्मक शैली को और भावों की तीव्रतम अनुभूति कराने वाली प्रतीक शैली को।

क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा सम्पादित लोकप्रिय हिन्दी कवि नीरज में यद्यपि बहुत-सी वह कवितायें हैं जो 'गीत भी अगीत भी' में सम्मिलित हैं पर कुछ नई उपलब्धियाँ भी हैं। कला की दृष्टि से इसमें संग्रहीत सभी कवितायें उच्च कोटि की हैं। शिल्प का पूर्ण वैभव, कल्पना का सौन्दर्य इसमें पूर्णरूप से उभर कर आया है। अनेक नवीन बिम्ब हैं और प्रायः प्रचलित बिम्बों को नवीन अर्थों में प्रयुक्त किया गया है जिससे प्रेषणीयता के साथ-साथ भाव-व्यंजना भी सफलता से होती है। अनेक भाव एवं अनेक विचार इन बिम्बों में मूर्तित हुए हैं। उनके दार्शनिक गहन चिन्तन को इन बिम्बों ने सहज और आकर्षक बना दिया है। जीवन की विडम्बना और क्षणिकता को कवि ने प्याला, आँधी के पत्ते, माला, तस्वीर आदि के प्रतीकों एवं प्रतीकात्मक बिम्बों द्वारा प्रस्तुत किया है :

क्या अजीब थी प्यास कि अपनी,
उमर पी रहा था हर प्याला,
जीने की कोशिश में, मरता
जाता था हर जीने वाला,
कहने को सब थे सम्बन्धी
लेकिन थे आंधी के पत्ते
जब तक परिचित हों आपस में
मुरझा जाती थी हर माला।
ओ हर चित्र बनाने वाले
ओ हर रास रचाने वाले
झूठी थी तस्वीरें सब तो,
यौवन को दर्पण मत देता।

यहां समस्त प्रतीक दार्शनिक विचारों को बड़ी सफलता से मूर्त्तित करते हैं। आंधी के पत्ते आदि नवीन उपमान भी हैं। जीवन की नश्वरता को ही उन्होंने अन्यत्र भी बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया है :

दिन एक मिला था सिर्फ मुझे,
मिट्टी के बन्दी खाने में,
आधा जंजीरों में गुजरा,
आधा जंजीर छुड़ाने में।

यहां जंजीरी जीवन पर लगे हुए अनेक प्रकार के प्रतिबन्धों की प्रतीक हैं। सामाजिक समस्यायें भी प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं :

यूं चलती थी हाट कि बिकते,
फूल दाम पाते थे माली,
दीपों से ज्यादा अमीर थी
उंगली दीप बुझाने वाली,
और यही तक नहीं, आद
लेकर सोने के सिंहासन को

पूनम को बदचलन बताती
थी मावस की रजनी काली ।

यहां हाट, फूल, माली, दीप, उंगली, पूनम, सोने का सिंहासन, रजनी सभी प्रतीक हैं जो आज की पूंजीवादी व्यवस्था, विधाननियम (Constitution) आदि की विडम्बना उसके अन्याय का पर्दाफाश करती हैं। यहां कवि की रूपकों के माध्यम से कथ्य को प्रस्तुत करने की शैली भी बहुधा मिल जाती है। यह सभी रूपक प्रतीकात्मक हैं जो अन्यार्थ की व्यंजना करते हैं। जैसे :

देख मंच से चले गये हैं
जाने कितने गाने वाले,
एक एक कर उठते जाते,
हैं भीड़ भी लगाने वाले,

फिर तेरी क्यों चाह कि मैं ही
गाते गाते रात गुजारू ?
कसते कसते तार पड़े जब
पोर पोर उंगली में छाले ।

अब तो कर समाप्त सम्मेलन
अब तो कर आभार प्रदर्शन

गीतों का क्षण बीत चुका तब गाकर किस मन को भाऊंगा ।
जब तक साथ न तू गायेगा, मैं भी गीत नहीं गाऊंगा ।

यहां संगीत सम्मेलन के माध्यम से थके हुए जीवन की घुटन और पीड़ा की बात कही गई है। यह गीत हमें सूर के "अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल"—पद की याद दिलाता है ! सृष्टि में आकर आत्मा तरह-तरह से हर स्वर में गाती ही रहती है। इस संकलन में अनेक नई प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई छंद मुक्त कविताएँ भी हैं। इनमें राजमार्ग के पथ यात्री, कविता, गंदगी आदि कविताएँ अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। कविता में चिड़िया के माध्यम से कविता की उत्कृष्टता और निकृष्टता को उत्कृष्ट बना देने की व्याख्या है। गदंगी-व्यक्तिगत

श्रौर समाजगत गंदगी अर्थात कलुष की प्रतीक है तकिये का गिलाफ आवरण का प्रतीक है :

> मत उतारो !
> दोस्त तकिये का गिलाफ मत उतारो ।
> आवरण वैसे बुरी चीज है
> छल है,
> दुराव है,
> लेकिन जब आधार गंदा हो
> बनियाइन मैली हो
> बाहर तब निर्मलता जरूरी है ।

समष्टि में इस संकलन की सभी कविताएँ बिम्बों और प्रतीकों की दृष्टि से अत्यन्त सफल हैं । वे नवीन हैं भाव व्यंजक हैं एवं सफल हैं ।

नीरज की 'गीत भी अगीत भी' शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है । अनेक नवीन उपमान, बिम्ब और प्रतीक यहां आये हैं । अधिकतर बिम्ब प्रतीकात्मक हैं जो कवि के विकास के स्पष्ट प्रमाण हैं । जीवन की व्यष्टिगत और समष्टिगत—दोनों प्रकार की भावनायें यहां प्रतीक रूप में व्यक्त हुई हैं । व्यक्तिगत स्तर पर तुम्हीं नहीं मिले जीवन में, ऐसी रात नहीं आती है, बिन धागे की सुई जिन्दगी, सारा जग मधुबन लगता है, अब सहा जाता नहीं—आदि में प्रतीक और बिम्बों के माध्यम से वैयक्तिक पीड़ा को अभिव्यक्ति किया गया है । साधारण से साधारण बिम्ब से पीड़ा की तीव्रतम अनुभूति कराई गई है :

> मिट्टी तक तो रूँधकर जग में
> कंकड़ से बन गई खिलौना
> पर हर चोट ब्याह करके भी,
> मेरा सूना रहा बिछौना ।
> नहीं कहीं से पाती आई, नहीं कहीं से मिली बधाई,
> सूनी ही रह गई डाल, इस इतने फूलों भरे चमन में ।

नवीन प्रतीकों की योजना भी है सहज और साधारण शब्दों को प्रतीक रूप दिया गया है। संदर्भगत उपकरणों को भी प्रतीक रूप दिया गया जो अत्यन्त प्रभावशाली हो गया है यथा—

> रो न मेरे मन, न गीला आंसुओं से कर बिछौना
> हाथ मत फैला पकड़ने को लड़कपन का खिलौना
> मेह पानी में निभाता कौन किसका साथ —।

यहां मेह पानी संदर्भ की पूर्ति के साथ-साथ प्रतीक भी है। नीरज की सबसे बड़ी विशेषता है कि साधारण से साधारण, गलियों, चौराहों और घरों में बोले जाने वाले शब्दों में उन्होंने भाव-व्यंजना की अपूर्व सामर्थ्य भर दी है। 'मैं पीड़ा का राजकुंवर हूं' आदि कविताओं में भी इसी प्रकार के प्रतीकात्मक उपमान आये हैं :

> मेरा कुर्ता सिला दुःखों ने,
> बदनामी ने काज निकाले,
> तुम जो आंचल ओढ़े उसमें,
> नभ ने सब तारे जड़ डाले।

व्यक्तिगत प्रेम और पीड़ा से लेकर समष्टि की समस्त समस्यायें इन बिम्बात्मक प्रतीकों में व्यक्त हुई हैं। घृणा और द्वेष के हाथों मानव-जीवन का कितना विध्वंस हुआ है और अगर जीवन में प्रेम न हो मात्र इन दुष्प्रवृत्तियों का ही अधिकार हो तब मानव-जीवन किस तरह विघटन की ओर अग्रसर होता जायगा इसकी कल्पना को इस प्रकार मूर्त्त किया गया है :

> प्यार अगर थामता न पथ में, उंगली इस बीमार उमर की,
> हर पीड़ा वेश्या बन जाती, हर आंसू आवारा होता।
> निरवंशी रहता उजियारा,
> गोद न भरती किसी किरन की,
> और जिंदगी लगती जैसे
> डोली कोई बिना दुल्हिन की

दुःख से सब बस्ती कराहती, लपटों में हर फूल झुलसता,
करुणा ने जाकर नफरत का आँगन गर न बुहारा होता।

जीवन की अन्य समस्यायें भी इन बिम्बों में मूर्तित हुई हैं। यश, भावना, हृदय व कामना का आज के विघटनशील युग में क्या अर्थ रह गया है ? इसका प्रकटीकरण भी बिम्ब द्वारा हुआ है :

यश की बनी, अनुचरी प्रतिभा
बिकी अर्थ के हाथ भावना,
काम-क्रोध का द्वारपाल मन,
लालच के घर रेहन कामना,

अपना ज्ञान न जग का परिचय
बिना मंच का सारा अभिनय
सूत्रधार तुम बनो अगर तो—
मैं अदृश्य दर्शन बन जाऊँ।

'गीत भी अगीत भी' में संग्रहीत 'मां' को सम्बोधित करके लिखे गये चार गीतों की प्रतीक योजना शुद्ध रहस्यवादी प्रतीकों की श्रेणी में आती है। वहाँ अल्हड़ नायिका, किशोर बचपन व 'मां' के माध्यम से जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। यह कवितायें पूर्णतः रूपकात्मक (allegorical) हैं इसलिए बिना इसके रूपक अर्थात प्रतीक और प्रतीकार्थ को समझे बिना इनका अध्ययन असम्भव है। अक्सर उसके रूपक को न समझने से ही भाँति-भाँति के भ्रम खड़े हो जाते हैं। 'मां मत हो नाराज' में चुनरिया जीवन का प्रतीक है। संसार एक मेला है जहाँ हर चादर यानी हर जीवन दोषपूर्ण है, कोई भी व्यक्तित्व इतना साफ नहीं है कि एक धब्बे का हल्का निशान भी उस पर न हो। कबीर संत थे, ज्ञानी थे, मुक्त थे इसलिये गर्व के साथ कह गये थे—'दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनि चुंदरिया।' पर एक सांसारिक के लिए तो यह बहुत बड़ी गर्वोक्ति है। इसलिए नीरज ने मैली चुंदरिया का दोष अपना ही मान लिया है। वस्तुतः यह हर व्यक्ति की अपने दोष की स्वीकारोक्ति है :

मेला भी मेला कैसा ? पग
पग पर जहाँ बिछा आकर्षण,
लाख दुकानें, लाख तमाशे,
लाख नटनटी, लाख प्रदर्शन

और फूल भी नकली ऐसे
असली देख जिन्हें शरमाए
फिर तू ही बतला अपना मन
कैसे वश में रखे लड़कपन

फिर भी मैंने बहुत कसा मन
चंचल दृग पर किया नियंत्रण,
रंगा खिलौना देख एक पर खुल ही मन की गई किवरिया।

यहाँ मेला, दुकानें, तमाशे, नटनटी, फूल, खिलौना सभी प्रतीकवत प्रयुक्त हुए हैं। 'मां अब गोद सुला ले' एकाकी थकी हुई आत्मा का गीत है जो चिर शान्ति की इच्छुक है। इसके विपरीत 'मां मत ऐसे टेर' भुक्ति और मुक्ति, जीवन के आकर्षण-विकर्षण के बीच उलझी चेतना का गीत है। जहाँ एक ओर मां की परम शान्त आनन्ददायिनी गोद है तो दूसरी ओर अपूर्ण सपने, अधूरा निर्माण, अपूर्ण आकांक्षाये है। जिनके बीच चेतना अनिश्चय की स्थिति में द्वन्द्वात्मक स्थिति में, खड़ी भूल रही है। 'मां जल भरन न जाऊं' व्यक्ति और उसके अहं का गीत है। अहम् जो उसे कहीं सहज, स्वभाविक नहीं रहने देता, सर्वत्र किसी न किसी रूप में व्यक्ति के साथ रहता है और उसको अनेकों आकर्षणों-विकर्षणों में उलझाकर भ्रमित रखता है। व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु उसका अपना अहं है, जो उसको—व्यक्ति को आदि से अन्त तक फिरकनी की तरह फिराता रखता है :

जिधर बढ़ाऊँ चरण उधर ही,
साथ लगा छाया सा डोले,
भीड़ देख जा छिपे आड़ में
इकला पाते ही संग होले,

तरह तरह के रूपक रचकर
ऐसा नाच नचाए मन को
बिना सूत्र के पुतली नाचे
बिना तार एकतारा बोले।

घट से तट तक, थल से जल तक
पर्णकुटी से, राजमहल तक
कोई भी पथ नहीं जहां यह हेरा-फेरी करे न भौंरा।

यहां हर उपकरण, हर व्यापार, प्रतीकात्मक है जो समग्र रूपक (Allegony) में सहायक हैं। इसी प्रकार कबीर की फक्कड़ शैली में लिखे गये गीत 'साधो हम चौसर की गोटी', 'दुनियां दरसन मेला', 'जीवन दुख की घाटी'—जीवन और संसार के दार्शनिक चिन्तन के प्रतीक हैं। 'हम चौसर की गोटी' में चौसर के खेल के माध्यम से जीवन को प्रस्तुत किया गया है। यह कविता भी एक पूरा रूपक (Allegony) है। 'दुनियां दरसन मेला' में मेले के माध्यम से जीवन और उसके आकर्षण-विकर्षणों को मूर्त किया गया है। 'जीवन दुःख की घाटी' में जीवन के दुःखमय और नश्वर रूप को प्रकट किया गया है:

क्या सोया है ओढ़ गुदड़िया,
साथ सुला माटी की गुड़िया,
दुनिया तो है अरे बावरे बिन पाटी की खाटी।

'बिन पाटी की खाटी' जीवन की अनिश्चितता का अत्यन्त व्यंजक प्रतीक है जो बरबस हमें मध्यकाल की सन्त परम्परा विशेषतः कबीर का स्मरण करा जाता है। इसी संग्रह में संग्रहीत 'रीती गागर का क्या होगा' गीत भी रूपकात्मक है जिसमें माखन और रिक्तता के व्याज से जीवन तत्त्व और जीवन की शून्यता की व्यंजना कराई गई है। अन्तिम छन्द में पूंजीवाद और समाजवाद के द्वन्द का संकेत है:

अब तक थी भरपूर मटकिया,
सौ सौ चोर खड़े थे द्वारे

अनगिन चिन्तायें थी मन में
मेंह जड़े थे लाल किवाड़े,

किन्तु कट गई अब हर सांकल,
और होगई हल हर मुश्किल,
अब परवाह नहीं इतनी भी,
नाव लगे किस नदी किनारे।

वस्तुतः यह कवितायें हिन्दी गीत-साहित्य की mile-stones हैं। जिनके कारण नीरज को सदैव याद किया जायगा। 'गीत भी अगीत भी' की छन्द-मुक्त शैली में लिखी गई कवितायें भी प्रतीकात्मक हैं। पायदान निम्न वर्ग का प्रतीक है तो मोती चेतना का, ढ़ंताढ़ंत की किताब जीवन के सम्बन्धों की, हरिण और मृगजल व्यक्ति और भ्रम और सत्य अर्थात् जीवन गति का :

ओ प्यासे हरिण !
जल की खोज में तू दौड़ा,
जीवन की अन्तिम श्वास तक तू दौड़ा,
रेगिस्तान के इस छोर से उस छोर तक तू दौड़ा।

× × × ×

और यह जान सका—
मृग जल जो भ्रम है
वह जीवन है गति है
जल जो सत्य है
वह अगति है
मरण की स्वीकृति है।

इस प्रकार 'गीत भी अगीत भी' बिम्ब और प्रतीकों की समृद्धि का एक रत्नकोष है व कवि को उत्कृष्ट कला का मुखर प्रमाण है।

समष्टि में नीरज का विकसित होता हुआ काव्य-व्यक्तित्व उनके प्रतीकों की समृद्धि और गहराई व तीव्रता से स्पष्ट भासित होता है। नीरज बिना

प्रतीकों के कोई बात ही नहीं कहते यही उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है और उनके प्रतीकों की लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण है कि वह मात्र व्यक्ति के अर्थात् सिर्फ उनके अपने नहीं हैं यानी बुद्धि के प्रयास से गढ़े हुए नहीं हैं वरन् वह समाज के हैं। हर घर, हर गली, हर व्यक्ति के हैं। नीरज की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि अछूत और तिरस्कृत शब्दों को काव्य में प्रयोग करके गूढ़ से गूढ़तम भावनाओं का प्रतीक बना दिया। इसीलिए वह सहज ग्राह्य हैं। आधुनिक काल के नीरज ही सम्भवतः एक मात्र ऐसे कवि हैं जिनके प्रतीक और बिम्ब जीवन से इतने घुले-मिले, इतने प्राणवान और इतने व्यंजक हैं।

नीरज का मानववाद

नीरज का मानववाद एक ऐसा महल है जिसे करुणा, प्रेम, भक्ति और दर्शन की भित्तियों के आधार पर खड़ा किया गया है—और जो महल होते हुए भी महल नहीं चौराहा है, जहाँ हर वर्ग, हर वर्ण, हर देश, हर धर्म, हर जाति का व्यक्ति चल सकता है, रुक कर बात भी कर सकता है। नीरज के निकट यह मानव प्रेम उनके काव्य का सबसे बड़ा सत्य है—दीपक की रोशनी और सूरज की गर्मी की तरह और उसी विश्वात्मा के गीत गाना उनके निकट सबसे बड़ा धर्म है धर्म यानी ईमान जो उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी शर्त है, एक अनिवार्यता है। उनके निकट धर्म और सत्य का सबसे बड़ा मापदंड मानवप्रेम ही है। इसलिए उनकी कविता व्यक्ति की नहीं समाज की भी है, राष्ट्र की भी है और विश्व की भी है वह एक ऐसी वाणी है जो तार-स्वर में गा सकती है—

> कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है,
> मैं न बँधा हूँ देशकाल की जंग लगी जंजीर में,
> मैं न खड़ा हूँ जाति पाँति की ऊँची नीची भीड़ में
> मेरा धर्म न कुछ स्याही शब्दों का सिर्फ गुलाम है
> मैं बस कहता हूँ कि प्यार है तो घट घट में राम है
> मुझसे तुम न कहो, मंदिर मस्जिद पर मैं सर टेक दूँ
> मेरा तो आराध्य आदमी, देवालय हर द्वार है।

मानव प्रेम का यह स्वर उनके काव्य में सर्वत्र ही सुना जा सकता है। 'दर्द दिया है' के 'दृष्टिकोण' में कविता विषयक अपने विचारों को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है :

'जहाँ तक जीवन है, जहाँ तक मनुष्य है, जहाँ तक सृष्टि है, वहाँ तक उसकी (कविता की) गति है, उसके लिए कुछ भी त्याज्य नहीं है, अशिव को

शिव, असुन्दर को सुन्दर, और असत्य को वह सत्य बनाना चाहती है। यही उसके गाने का ध्येय है और यही उसके रोने का अर्थ है। उसने शब्दों का जो महल बनाया है, उसमें दीवाने खास जैसी कोई चीज नहीं है। वहाँ केवल दीवाने आम ही है और उसमें प्रत्येक जाति, प्रत्येक वर्ग बिना किसी संकोच के प्रवेश कर सकता है और आमने सामने खड़ा होकर अपनी बात कह सकता है।'

इस प्रकार उनकी कविता किसी एक दायरे में बंद नहीं है। उसका हर फूल, हर गंध पब्लिक पार्क की तरह प्रत्येक की थाती है, प्रत्येक का दुःख दर्द और प्रत्येक के टूटे फूटे सपने उसमें बैठकर आत्म शांति पा सकते हैं। यही उनकी कविता का धर्म है यही सत्य है और यही लक्ष्य है। इसीलिए उनका गीत एक व्यक्ति का गीत नहीं है, वह जमाने का गीत है, वह उन सबका गीत है जिनका स्वर अनसुना है।

मैं उन सबका हूँ कि नहीं कोई जिनका संसार में
एक नहीं दो नहीं हजारों साझी मेरे प्यार में।
मेरा चुम्बन चांद नहीं सूरज का जलता भाल है,
आलिंगन में फूल न कोई, धरती का कंकाल है,
वर्तमान के लिए विकल मैं, विरही नहीं अतीत का
नव भविष्य का नव स्वर्णोदय सपना मेरे गीत का,
किसी एक टूटे स्वर से ही मुखर न मेरी श्वास है
लाखों सिसक रहे गीतों के क्रंदन हाहाकार में।

उनका यह दर्द हर मुरझाई फसल, हर बुझते दीपक, हर भूखी रात, हर प्यासी सुबह का दर्द है, एक ऐसा दर्द जो गीत बनकर दीपक की रोशनी को अपने अंचल में बांधकर हर अंधेरे को उजाला दे देने की कामना करता है। वह एक ऐसा समर्पण है जो हर दीन दुःखी के प्रति, एक ऐसा उजाला है, जो हर घर का है :

मुरझा पाये फसल न कोई,
ऐसी खाद बने इस तन की

किसी न घर दीपक बुझ पाये,
ऐसी जलन जले इस मन की।

भूखी सोये रात न कोई,
प्यासी जागे सुबह न कोई,
स्वर बरसे सावन आ जाये,
रक्त गिरे गेहूँ उग आये।

ऐसा दे दो दर्द मुझे तुम
मेरा गीत दिया बन जाये।

अपने काव्य के इसी सत्य को 'दर्द दिया है' के 'दृष्टिकोण' में उन्होंने इस तरह लिखा है : 'मेरी मान्यता है कि साहित्य के लिए मनुष्य से बड़ा और दूसरा सत्य संसार में नहीं है और उसे पा लेने में ही उसकी सार्थकता है। जो साहित्य मनुष्य के सुख दुःख में साझीदार नहीं—उससे मेरा विरोध है। मैं अपनी कविता के द्वारा मनुष्य बनकर मनुष्य तक पहुँचना चाहता हूँ। वही मेरी यात्रा का आदि है और वही अन्त।'

गीतों द्वारा दुनिया के दुःख दर्द को गाना ही सिर्फ काफी नहीं है। उनके गीतों का अर्थ है दुनिया के दुखते घावों को सहलाना, ऐसा न होने पर गीत-गीत नहीं रह जाते महज शोर बन जाते हैं। इसीलिये उन्होंने कहा है :

दुनिया के घावों पर मरहम जो न बनें
उन गीतों का शोर मचाना पाप है।

उनकी कविता का अर्थ भी मनुष्य है और इति भी मनुष्य है। वही उनके निकट मानवता का सबसे बड़ा प्रमाण है इसलिए मानव के प्रति ही उनकी कविता का शीर्ष वाक्य बन गया है—

पर वही अपराध मैं हर बार करता हूँ,
आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ।

उनकी अब युद्ध नहीं होगा, जीवन जल, फूलों का विद्रोह, भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है आदि कविताएं इसी मानव-प्रेम से ओत प्रोत हैं।

मानव के स्वभाविक विकास में जो कुछ भी बाधक है उससे उनका विरोध है। मनुष्य और मनुष्य के बीच की किसी दीवार, किसी पर्दे को वह सह नहीं सकते। 'भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है' का कवि धर्म-कर्म, जाति-पांति, विधि-निषेधों से परे सिर्फ मानव प्रेम का गायक है जो हर अत्याचार, हर उठती हुई तलवार के विरोध में है—

हैं कांप रही मंदिर मस्जिद की दीवारें
गीता कुरान के अर्थ बदलते जाते हैं।
ढहते जाते हैं दुर्ग द्वार मकबरे महल,
तख्तों पर इस्पाती बादल मँडराते हैं

अंगड़ाई लेकर जाग रहा इंसान नया
जिंदगी कब्र पर बैठी बीन बजाती है
हो सावधान, सँभलो ओ ताज तख्त वाले।
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।

मानव के स्वभाविक विकास में जहां भी जीवन की अकृत्रिमता आड़े आयी है कवि ने विद्रोह और क्रांति तक को स्वीकार किया है। जीवन के विकास मार्ग की कोई भी बाधा उन्हें स्वीकार नहीं है पर इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिये कि वह प्रगतिवादी हैं और मार्क्स के समाजवाद के व्याख्याता हैं वस्तुत: वह बिना किसी वाद में दीक्षित हुए, बिना किसी नारेबाजी में शामिल हुए सिर्फ प्रगति के समर्थक हैं। मानव के विकास के लिए विद्रोह तक उन्हें इसी कारण स्वीकार है। क्रांति को भी वह स्वभाविक रूप में स्वीकार करते हैं :

यह रंगों का जो वस्त्र बुना है धरती ने
तेरी फौलादी कैंची काट न पायेगी,
भूल से भी पड़ गई अगर तुझ पर फुहार
यह इस्पाती सलाख कागज हो जायगी
मत कैद कर इन चांदी के महलों में
आंगो घर की ही दीवारें हो जायेंगी

मत हाथ बढ़ा इसके छूने को ओ पागल,
दुश्मन कर की तलवारें हो जायेंगी।

तू धूल न इस पर फेंक, सीख बस यह इससे
किस भाँति विश्व में मधु ऋतु लाया जाता है
कैसे विनाश पर विजयी होता है विकास
किस तरह धूल में फूल खिलाया जाता है।

जीवन जल में पूँजीवाद के विरुद्ध समाजवाद का स्वर मुखर हुआ है। व्यक्ति की पीड़ा और शोषित अवस्था ने उन्हें अम्बर में कैद रहने वाले जल का विरोधी बना दिया है—

नीची हो जाती हैं चोटियां पहाड़ों की,
जब प्यास तड़प कर अपना शीश उठाती है
धोने को पांव विकल हो उठते हैं सागर,
जब वह निज रेगिस्तानी नजर घुमाती है।

उसकी मुट्ठी में बंद पड़े आंधी अंधड़,
पग में करवट लेती हलचल भूचालों की
सांसों में चिनगारियां हजारों अकुलाती
ओठों पर क्रान्ति, करों में माल मशालों की।

अब भी संभाल ले होश! हवा को देख जरा,
जंजीर खोल दे शीघ्र जिंदगी के जल की
अब भी है समय छोड़ सिंहासन अंबर का
आज ही आज की सिर्फ, न कर कल की चिंता।

'अब युद्ध नहीं होगा' का कवि युद्ध की विभीषिकाओं से पीड़ित और संत्रस्त है और मानव की सुरक्षा की उसे चिन्ता है। यहाँ नीरज एक व्यक्ति नहीं एक समाज नहीं, वह दुनिया के शोषित और पीड़ित प्राणी का प्रतिरूप है जो अत्याचारों से पीड़ित है जख्मों से घायल है। व्यष्टि का दर्द यहाँ समष्टि का दर्द बन गया है। यह दर्द यानी प्रेम की ही अनुभूति है जिसने व्यक्ति को

अहं की कारा से मुक्त कर चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया जहाँ कोई खिड़की, कोई दीवार, कोई पर्दा नहीं। उन्होंने कहा है :

मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर में रहूँ अकेला, पर
सुख ने दरवाजा बंद किया, दुःख ने दरवाजा खोल दिया।

और इसका परिणाम यह हुआ कि मिट्टी का हर निर्माण भगवान बन गया, जो शीश किसी मंदिर-मस्जिद, राम-रहीम के आगे नहीं झुका था वही 'जनजनार्दन' के आगे झुक गया—

खोजने तुमको गया मठ में विकल अरमान मेरा,
पत्थरों पर झुक न पाया पर सरल शिशु ध्यान मेरा
जन जनार्दन की चरण रज किंतु जब शिर पर चढ़ाई
मिल गया मुझको सहज उस धूल में भगवान मेरा।

और दुःख की इस समष्टिगत अनुभूति से व्यक्ति एक ऐसा गीत बन गया जो हर स्वर, हर ओठ से निकल सकता था, वह किसी वर्ग, किसी समाज, किसी धर्म की किताब में बन्द नहीं हो सकता था, हर द्वार से उसकी मैत्री हो गई, जीवन एक मेला बन गया तरह-तरह के रंग रूपों से सज्जित और व्यक्ति एक ऐसी चेतना जो सब रूपों में रूपायित हो सकती थी—

इस द्वार क्यों न जाऊँ, उस द्वार क्यों न जाऊँ
घर पा गया तुम्हारा, मैं घर बदल बदल कर।

वे दाग सूत वाले, सौ दाग सूत वाले,
इस हाट कुछ दुशाले, उस हाट कुछ दुशाले,
कुछ कह रहे इसे ले, कुछ कह रहे उसे ले
इससे बदन छिपा ले, उसका कफन बनाले,

मैं क्यों इसे कढ़ाऊँ, मैं क्यों इसे धुलाऊँ,
परदा उठा चुका हूँ, चादर बदल बदल कर।

इस व्यक्ति प्रेम ने उसके हृदय का विस्तार किया है वह कृत्रिमता की जंजीरों में नहीं जकड़ गया है, किसी धर्म, समाज या देश की कारा में बंदी

नहीं हो गया है वरन् वह विश्व के खुले मैदान में खड़ा है जहाँ हर धूप, हर छाँह सीधी आ सकती है। विश्व का हर भटकता हुआ, पीड़ित व्यक्तित्व उसकी सहानुभूति का अधिकारी हो जाता है--

सूनी सूनी जिन्दगी की राह है,
भटकी भटकी हर नजर निगाह है,
राह को सँवार दो,
निगाह को निखार दो,
आदमी हो तुम कि उठो आदमी को प्यार दो,
दुलार दो,
रोते हुए आँसुओं की आरती उतार दो।

जीवन में हर ओर अभाव है, हर ओर कोई आँसू है जो कवि को विकल बनाये रखता है :

जिस दरवाजे गया, मिले,
बैठे अभाव कुछ बने भिखारी,
पतझर के घर गिरवी थी मन,
मोह गई जो भी फुलवारी।
कोई था बदहाल धूप में,
कोई था गमगीन छाँव में,
महलों से कुटिया तक दुख की,
थी हर सुख से रिश्तेदारी।
ओ हर खेल खिलाने वाले
ओ हर रास रचाने वाले,
छुपे खिलौने थे तेरे तो, गुड़ियों को बचपन मत देता।

विश्व प्रेम ने व्यक्ति का सबसे बड़ा उपकार यह किया कि उसे ससीम से असीम बना दिया, उसके अहं का प्रसार कर दिया, उसके अन्दर समष्टिगत भावनाओं को जन्म दिया। उसकी दृष्टि में समष्टि का महत्व व्यष्टि से अधिक हो गया। प्राण गीत में नीरज समष्टि की महत्ता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं :

मैं सिखलाता हूँ कि जिग्रो औ' जीने दो संसार को,
जितना ज्यादा बांट सको तुम, बाँटो अपने प्यार को,
हँसों इस तरह, हँसे तुम्हारे साथ दलित यह धूल भी,
चलो इस तरह कुचल न जाये, पग से कोई शूल भी,
सुख, न तुम्हारा सुख केवल, जग का भी उसमें भाग है,
फूल डाल का पीछे, पहले उपवन का शृङ्गार है।
कोई नहीं पराया मेरा घर सारा संसार है।

व्यक्ति का दृष्टिकोण समष्टिगत हो जाने से मानव विकास का महत्व बढ़ जाता है और धर्म, मजहब से ज्यादा श्रम का महत्व हो जाता है क्योंकि जीवन का अंधेरा दूर करने का यही एक उपाय है—

जिसके हाथ कुलावी उसके हाथों में तकदीर है,
दुनिया सारी क्या है—केवल मेहनत की तस्वीर है,
धरती ही है अन्नपूर्णा औ' श्रम ही भगवान है।
मंदिर मस्जिद तो मजहब के पंडों की दूकान है।

यहाँ आकर व्यक्ति का प्रेम विश्व प्रेम में लय हो जाता है। इस चेतना स्तर पर आयु, जाति, वर्ण का कोई भेद नहीं रह जाता यहाँ वह सिर्फ एक व्यक्ति है, विश्वात्मा का एक दर्पण। यहाँ आकर व्यक्ति के स्थान पर विश्व खड़ा हुआ दिखाई देता है :

मैं तो तेरे पूजन को आया था तेरे द्वार,
तू ही मिला न मुझे वहाँ मिल गया खड़ा संसार।

विश्वात्मा के प्रति यह प्रेम कवि के निकट काव्य का सबसे बड़ा धर्म, सबसे बड़ा कर्म है। इस प्रेम का अर्थ है अहं से मुक्ति और यही मानव का परम लक्ष्य है। नीरज जी ने अपने इस मानव प्रेम को जीवन की सबसे बड़ी शक्ति माना है। जिसने उसे अनेकों आकर्षणों से बचाकर भटकने से बचा लिया है। वह कहते हैं :

'आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हूँ' यह मेरी कमजोरी है और शक्ति

भी है। कमजोरी इसलिए कि घृणा और द्वेष से भरे आज के संसार में मानव प्रेम के गीत गाना अपनी पराजय की कहानी ही कहना है, पर शक्ति इसलिए है कि मेरे इस मानव प्रेम ने ही मेरे आस-पास बनी हुई धर्म-कर्म, जाति-पाति आदि की दीवारों को ढहा दिया है और मुझे वादों के भीषण झंझावात में भी पथभ्रष्ट नहीं होने दिया है, जब मैं अपना सत्य खोजने निकला था—

पर्वतों ने झुका शीश चूमे चरण,
बाँह डाली कली ने गले में मचल
एक तस्वीर तेरी लिए किन्तु मैं—
साफ दामन बचाकर गया ही निकल।

मेरे पास मनुष्य की तस्वीर थी इसीलिए मैं अपने रास्ते से नहीं भटक सका। इसलिए यह मेरी शक्ति है।'

इसी कारण उनके काव्य में अन्य सब विधि-विधानों, रीतियों-नीतियों से ऊपर मानव की प्रतिष्ठा है। मानव जो प्रत्येक धर्म, प्रत्येक मजहब, प्रत्येक मंदिर, प्रत्येक मस्जिद, प्रत्येक समाज, प्रत्येक किताब में कैद पड़े ईश्वर से अधिक सत्य है, अधिक श्रेष्ठ है, जो सीमित न होकर असीमित है। मानव जो हर झोंपड़ी, हर खलिहान, हर खेत, हर बाग, हर दूकान, हर मकान में है, जो स्वर्ग के कल्पित सुख-सौन्दर्य से कहीं अधिक वास्तव है, अधिक सत्य है। इसलिए मानव और उसका घर निर्माण निर्वाण से अधिक आकर्षक है—

कहीं रहे कैसे भी मुझको प्यारा यह इन्सान है,
मुझको अपनी मानवता पर बहुत बहुत अभिमान है,
अरे नहीं देवत्व, मुझे तो भाता है मनुजत्व ही,
और छोड़कर प्यार नहीं स्वीकार सकल अमरत्व भी,
मुझे सुनाओ तुम न स्वर्ग-सुख की सुकुमार कहानियाँ
मेरी धरती सौ-सौ स्वर्गों से ज्यादा सुकुमार है।

इसीलिए मृत्यु अर्थात मुक्ति के अवसर पर भी उसे धरती की धूल भूलती नहीं है :

यह लजाती हुई कलियों की शराबी चितवन,
गीत गाती हुई पायल की यह नटखट रुनझुन,
यह कुँआ ताल, यह पनघट, यह त्रिवेणी संगम,
यह भुवन भूमि अयोध्या, यह विकल वृन्दावन,
क्या पता स्वर्ग में फिर इनका दरस हो कि न हो,
धूल धरती की ज़रा सर पे चढ़ा लूँ तो चलूँ।

उनके काव्य में सर्वत्र मानव की ही प्रतिष्ठा है सभी धर्मों सभी कर्मकाण्डों से वह ऊपर है :

जाति पाँति से बड़ा धर्म है,
धर्म ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्म काण्ड से बड़ा मर्म है,
मगर सभी से बड़ा यहाँ यह छोटा सा इंसान है
और अगर वह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।

उनकी मानव के प्रति यह श्रद्धा ही वह विश्वास है जो उनसे 'जगत सत्यं ब्रह्म मिथ्या' की घोषणा तक करवा लेता है। वस्तुतः यह कविता मानव में उनके अदम्य विश्वास, अपार प्रीति की द्योतक है। मानव का सुख दुःख, आशा-निराशा कवि के इतने निकट है कि जगत को वह मिथ्या नहीं पाता—

मैं कैसे कह दूँ धूल मगर इस धरती को,
जब अब तक रोज मुझे यह गोद खिलाती है,
मैं कैसे कह दूँ मिथ्या है सम्पूर्ण सृष्टि
हर एक कली जब मुझे देख शरमाती है।
जीवन को केवल सपना मैं कैसे समझूँ,
जब नित्य सुबह आ सूरज मुझे जगाता है,
कैसे मानूँ निर्माण हमारा व्यर्थ विफल
जब रोज हिमालय ऊँचा होता जाता है।

और अक्सर ब्रह्म की वह सौन्दर्य मूर्ति, आनन्द की आधार-भूमि खुद अपना ही उपहास करती प्रतीत होती है जब—

मिल जाता है जब कभी लगा सम्मुख पथ पर,
भूखे भिखमंगों, नंगों का सूना बजार,
तब मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारा ब्रह्म स्वयं,
है खोज रहा धरती पर मिट्टी का मजार।

धर्म के आध्यात्मिक अर्थात दार्शनिक रूप का कवि समर्थक है पर उसके बाह्याडम्बर और मिथ्यावाद को कवि सहन नहीं कर सकता। वह विश्वमानवता का समर्थक है। धर्माडम्बर को वह घृणा करता है क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच उसने ही सबसे बड़ी, सबसे मजबूत दीवार खड़ी की है। धर्म का खोखलापन ही उसे अविश्वासी बनने को मजबूर कर देता है। और तब इन्सान के आंसू, उसकी मुस्कान, उसके पसीने से उगी फसल, श्रम से उठा हुआ निर्माण अधिक सत्य, अधिक श्रेष्ठ हो जाते हैं और कवि का प्रेम और विश्वास ईश्वर को छोड़ मानव पर स्थिर हो जाता है। और इसलिए जहाँ भी और जब भी मानवता पीड़ित हुई है कवि का स्वर फूट निकला है। अफ्रीका की रंग भेद नीति के नाम पाती, नील की बेटी के नाम पाती, कश्मीर के नाम पाती, सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है, उद्‌जन बम्ब के परीक्षण पर, आदि कविताएँ उनकी मानवप्रेम से पीड़ित चेतना की ही कविताएँ हैं इसी के साथ मानव-विजय पर भी उनका हर्षोल्लास छिप नहीं सका है। ऐवरेस्ट विजय पर, आदि कविताओं में मानव विजय का उद्‌घोष है।

उनका मानव प्रेम उनकी प्रत्येक कविता में स्पष्ट हुआ है। चाहे वह वैयक्तिक स्तर पर लिखे गये प्रेम गीत हों या करुणा पूरित गीत, चाहे भक्ति-परक हों, चाहे दार्शनिक हों। सभी में उनका मानव प्रेम मुखर हुआ है। व्यक्तिगत सुख-दुःख अथवा प्रेम-गीतों में भी मानव का ध्यान उन्हें भूला नहीं है। 'नीरज की पाती' में संग्रहीत अनेक पातियाँ जो नितांत वैयक्तिक प्रेम से शुरू होती हैं। अक्सर मानव-प्रेम पर जाकर खत्म होती हैं। 'आज की रात तुझे आखरी खत और लिख दूँ", शाम का वक्त है, आज ही तेरा जनम दिन, लिखना चाहूँ भी तुझे खत तो बता कैसे लिखूँ ?' आदि पातियों का अथ व्यक्ति है तो इति मानव। व्यष्टि और समष्टि, व्यक्ति और विश्व का बड़ा सुन्दर

समन्वय उनकी इस कविता में है जहाँ कवि अपने प्रिय-व्यक्ति को समाज में लय कर देता है।

तुम उनका शृङ्गार करो जिनका पतझरों में घर है
तुम उनका जयकार बनो जिनका तलवारों पर सर है
तुम उनको दो मुकुट धरा की धड़कन हैं जिनकी साँसें,
तुम उन पर जलधार झरो, जिनका अंगारों का स्वर है,
जिनका रक्त सिंदूर सुबह का, जिनका स्वेद सूर्य जग का,
उनकी कीर्ति पताका बन तुम, फहरो सकल दिशाओं से
तुम निकलो जिन गांवों से, सूरज निकले उन गांवों से।

भक्ति और दर्शन परक गीतों में भी कवि का मानववादी स्वर ही अधिक मुखरित हुआ है। उस अनन्त असीम ईश्वर का दर्शन भी उसे किसी मंदिर, मस्जिद या गिरजे में नहीं होता, बस कुटिया, बगिया, खडहर, महल, सड़क, गली, गढ़-गेह सभी जगह उसे उस अनन्त की छाया दिखाई दे जाती है। 'हर दर्पन तेरा दर्पन है' कविता में उन्होंने कहा है :

हर दर्पन तेरा दर्पन है, हर चितवन तेरी चितवन है,
मैं किसी नयन का नीर बनूं तुझको ही अर्घ्य चढ़ाता हूं।
तपसिन कुटिया, बैरिन बगिया, निर्धन खंडहर, धनवान महल,
शौकीन सड़क, गमगीन गली, टेढ़े-मेढ़े गढ़, गेह सरल,
रोते दर, हँसती दीवारें, नीची छत, ऊँची मीनारें,
मरघट की बूढ़ी नीरवता, मेलों की क्वाँरी चहल पहल,
हर देहरी तेरी देहरी है, हर खिड़की तेरी खिड़की है,
मैं किसी भवन को नमन करूँ तुझको ही शीश झुकाता हूं।

उनके काव्य का ध्येय ही मानव की मानव से मैत्री कराना, कुटियों को महल से, खंडहरों को अट्टालिकाओं से परिचित कराना हर पर्दे में कैद प्रेम को जीवन के बीच ले आना। उन्होंने कहा है :

हृदय हृदय के बीच खाइयाँ, लहू बिछा मैदानों में,
घूम रहे हैं युद्ध सड़क पर, शांति छिपी श्मशानों में,

जंजीरें कट गईं मगर आजाद नहीं इंसान अभी,
दुनिया भर की खुशी कैद है चांदी जड़े मकानों में,
सोई किरन जगाता चल
रूठी सुबह मनाता चल
प्यार नकाबों में न बंद हो, हर घूंघट खिसकाता चल।
राही है सब एक डगर के सब पर प्यार लुटाता चल॥

यह नीरज के मानववाद का स्पष्ट उद्‌घोष है। यह वह चेतना स्तर है जहां मनुष्य मात्र मनुष्य है; न वह जाति है, न वह व्यक्ति है, न वह देश है, न वह धर्म है। वह इन सबसे परे एक ऐसी चेतन सत्ता है जो सर्वत्र व्यापक है जो विश्वात्मा है। विश्वात्मा—जो हर जाति को, हर देश को, हर धर्म को अपनी अपनी सीमाओं से निकाल कर अपने में लय कर लेती है। जहां व्यक्ति विश्व बन जाता है। इसी विश्वात्मा के गीत गाना ही नीरज के काव्य का प्रधान धर्म, प्रधान ध्येय है। उन्होंने स्पष्ट कहा है :

जीवन को मैंने देखा था चौराहे से,
धरती पर पांव टिका जग में मैंने झांका,
मैंने पहचाना मानव उसकी आंखों से,
पर हित से ही निज हित का मूल्य सदा आंका।

———

नीरज का मृत्युवाद

नीरज का 'मृत्युवाद' आधुनिक साहित्यिक चर्चा का एक ऐसा विषय है और 'मृत्युवादी नीरज' प्रतिपक्षियों का एक ऐसा फतवा है जो अथ से इति तक सिर्फ संदेहों और असहिष्णुता से भरा हुआ है। इस फतवे के पीछे आलोचकों के प्रौढ़ चिंतन और गम्भीर दर्शन का एकान्त अभाव ही ऐसा लगता है कि यह नीरज की बढ़ती हुई लोकप्रियता के लोभ में जन्मा था। यह एक अनर्गल द्वेषपूर्ण प्रलाप मात्र है। क्योंकि नीरज मूलतः मृत्युवादी नहीं हैं और इसलिए उनके लिए मृत्युवादी जैसा नाम दे देना भी एक दम गलत है। यह सुनकर कुछ कुछ वही लगता है जैसा बच्चन को हालावादी सुनकर लगता था। बच्चन की हाला सिर्फ एक सशक्त प्रतीक थी जिसे पूर्णतः न समझ सकने के कारण आलोचक सिर्फ शब्द को लेकर ही उड़ भागे। अक्सर पानी की गहराई नापने के बजाय हम केवल उसके तल पर जमी हुई काई की परत और कभी फूल हुए तो उनकी शोभा तक ही अपने को समाप्त कर देते हैं। नीरज के साथ भी ऐसा ही हुआ है। उनका 'मृत्युवाद' कोई वाद न होकर मात्र मृत्यु के प्रति उनका एक सशक्त विचार है—जीवन, प्रेम, करुणा आदि के सिद्धान्तों की ही तरह। उस विचार को वाद बनाकर प्रचारित कर देना बड़ा असंगत प्रतीत होता है। इस तरह तो नीरज को प्रेमवादी, करुणावादी और न जाने क्या क्या वादी कहा जा सकता है।

नीरज का मृत्युवाद मुझे सिर्फ एक लेबिल लगा है—पानी की शीशी पर लगा हुआ किसी जहरीली दवा का लेबिल, जो अक्सर लोगों को डराता है, भयभीत बनाता है और कम से कम तटस्थ तो कर ही देता है। और यह लेबिल किसी केमिस्ट की दुकान पर आकर नहीं लगा है इसे तो फार्मेसिस्ट साहित्यकारों ने ही गलत चिपका दिया है। पर आश्चर्य है जनता इससे उतना

अलग नहीं रह पाई है, फार्मेसिस्टों का लक्ष्य सिद्ध नहीं हुआ है और अवसर वह उसके साथ हँसी-रोई है। और पानी की ही तरह उसे स्वीकार कर गई है। मृत्यु के प्रति विश्वास का नीरज का यह विचार भी बहुत दिनों जीवित नहीं रहा है कुछ समय बाद ही उसका विरोध मिलने लगता है। वह सिर्फ एक समय का सत्य है। सिर्फ मृत्यु गीत और किन्हीं अंशों में बादर बरस गयो, आसावरी और प्राण गीत के कवि का सत्य है। दर्द दिया है, लहर पुकारे, गीत भी अगीत भी, लोकप्रिय कवि नीरज और पातियों के कवि का नहीं। यह उनकी मात्र एक विशिष्ट समय मे जन्मी एक विशिष्ट धारणा है पर उनके अन्य विचारों, सिद्धान्तों एवं विश्वासों को छोड़कर केवल इसे ही कविता का गौरव दे देना, अन्य विचारों के साथ अन्याय है और कवि को तो यह एकदम ही असमतल बना देता है।

जीवन के प्रति नीरज की इस निराशावादी धारणा और मृत्यु की अंतिम सत्य के रूप में स्वीकृति के पीछे अनेक कारण और अनेक परिस्थितियां रही हैं। उस काल उन्होंने तन, मन और आत्मा के स्तर पर जो कुछ भी यातनाएँ, यंत्रणाएँ और कुंठाएँ सहन कीं उन सबने नीरज की दृष्टि को एक विशेष कोण की ओर आकर्षित कर दिया और यह कोण था मृत्यु का। स्वभावतः जीवन से ऊबा हुआ व्यक्ति मृत्यु को ही अपनी निर्णीत नियति मान लेता है। नीरज ने भी ऐसा ही किया है। जब जीवन के समस्त आकर्षण उनके लिए त्याज्य बन गये तब एक ऐसा समय आया कि आकर्षणों की चमक से चौंध-चौंध जाने वाली दृष्टि धुँधली पड़ गई, एकदम अन्धेरा छा गया और विकर्षण को आकर्षण मानकर कवि उस ओर ही तेजी से बढ़ने लगा, जो सत्य नहीं, भ्रांति थी, क्योंकि उस समय केवल वही एक ऐसी उपलब्धि थी जो उसकी अपनी हो सकती थी। प्रायः बच्चे की मृत्यु हो जाने पर मां उसके कपड़ों और खिलौनों को ही बच्चे जैसा सत्य मान लेती है। (मैंने देखा है कि बंदरों में तो मां बच्चे के मर जाने पर उसका शव लिए ही घूमती रहती है जब तक कि वह एकदम कंकाल न हो जाय। पर यह एक उन्माद की अवस्था ही होती है। नीरज की मृत्यु विषयक यह धारणा भी एक उन्माद ही था। उन्माद

इसलिए कि वह उनके काव्य का ही सहज स्वर नहीं है। वह उनका सामयिक सत्य है चिरंतन सत्य नहीं।

नीरज के तथाकथित मृत्युवाद का जन्म उनके 'दो गीत' से होता है। यद्यपि दो गीत का प्रामुख जीवन का गीत ही है :

सौ सौ बार चिताओं ने,
मरघट पर मेरी सेज बिछाई
सौ सौ बार धूल ने मेरे,
गीतों की आवाज चुराई,
लाखों बार कफन ने रोकर
मेरा तन शृङ्गार किया पर—
एक बार भी अब तक मेरी
जग में मौत नहीं हो पाई।

और उसमें मृत्युगीत के साथ-साथ जीवन गीत भी संग्रहीत है। पर फिर भी मृत्युगीत ही अधिक आकर्षित करता है, वही स्मृति पटल पर गहरी छाप छोड़ जाता है, इसका कारण है उसकी निष्कपट अनुभूति और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति। किन्ही भावुक क्षणों में कपड़े की बनी सजी सजाई सुन्दर गुड़ियां भी तो हमें बोलती सी लगने लगती हैं जबकि वह मात्र भ्रांति ही होती है। मृत्युगीत भी किन्हीं आवेशमय क्षणों की कृति है और कोई कोई भावुक क्षण ही इसे अनुभूत भी करते हैं। मृत्युगीत को पढ़कर एक ऐसा आंसू निकलता है जिसकी सत्यता पर कुछ समय बाद हमें खुद शक होने लगता है। क्योंकि अन्ततः कवि का सामयिक सत्य ही है और उसको चिरंतन मान लेना, Somnambulism की अवस्था में अपने को जीवित रखना है।

मृत्युगीत दो किश्तों में लिखी गई रचना है। पूर्वार्द्ध में आवेश और विकलता अधिक है तो उत्तरार्द्ध में चिन्तन। प्रारम्भ में मृत्यु को सत्य मानकर प्रकृति के प्रत्येक उपकरण में, प्रत्येक व्यापार में मृत्यु के काले हाथों की छाया दिखाई गई है :

वह लाल किला जो सदियों से गर्वोन्नत-सा,
अब तक गाता है शाहजहाँ का विजय गान,
उसमें ही पड़ी दरारें पर यह कहती हैं,
"देखो इनमें सोये हैं कितने सुनसान !"

पर शीघ्र ही कवि को जीवन मरण के प्रश्न पर विचार करने को भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि मिल गई है। आवागमन पर वह विश्वास करता है इसलिए मृत्यु को भी वह तर्क संगत बना लेता है :

मैं समझ नहीं पाया हूँ अब तक यह रहस्य
मरने से क्यों सारी दुनिया घबराती है,
क्यों मरघट का सूनापन चीखा करता है
जब मिट्टी मिट्टी से निज ब्याह रचाती है,
फिर मिट्टी तो मिटती भी नहीं कभी भाई,
वह सिर्फ शक्ल का चोला बदला करती है
संगीत बदलता नहीं किसी भी धड़कन का,
केवल गायक की बोली बदला करती है।

नीरज की मृत्यु संबंधी विचारधाराओं को समझने से पूर्व मृत्यु के सम्बन्ध में कुछ प्रसिद्ध धारणाओं की चर्चा भी आवश्यक है। गीता में कहा गया है जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्रों को त्यागकर नवीन वस्त्रों को धारण करता है, उसी प्रकार जीवात्मा भी पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को प्राप्त करती है :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि,
यथा शरीराणि विहाय जीर्णा—
न्यन्यानि संयाति नवानिदेही।

मृत्यु यहाँ सिर्फ वस्त्रों का परिवर्तन करना ही है। इससे आवागमन और आत्मा की अमरता दोनों की पुष्टि होती है। पर चार वाक्य 'भस्ममयी

भूतस्य' और 'देहस्य पुनरागमन कुतः' कहकर आवागमन की अस्वीकृति दी गई है। शेक्सपीयर ने मृत्यु को मात्र निद्रा ही माना है :

To die : to sleep
Perchance to dream
Aye, there is the rub... .... (Hemlet)

मृत्यु की आयुर्वेदिक व्याख्या में मृत्यु को एक रोग माना है जिसकी चिकित्सा असम्भव है। 'आरोग्य निकेतन' नामक उपन्यास में इसी धारणा की प्रतिष्ठा है। इसके विपरीत प्रसिद्ध लेखक राइडर हेगिल्ड ने अपने विश्व प्रसिद्ध उपन्यास 'She' में मृत्यु को जीवन का सहजीवी माना है। उसने सृष्टि को अग्नि का एक स्रोत माना है। जीवन और मृत्यु एक ही उत्स से निकली दो अग्नि शिखाएँ हैं। उर्दू कवि चकबस्त ने इन सबके विपरीत मृत्यु की दार्शनिक व्याख्या न करके वैज्ञानिक व्याख्या की। उन्होंने कहा जीवन विभिन्न भौतिक तत्वों में 'क्रम' का नाम है व यही क्रम भंग मृत्यु है।

जिंदगी क्या है अनासिर में जहूरे तरतीब
मौत क्या है इन्हीं अजजा का परीशां होना।

और आध्यात्मशास्त्री Lead Beater ने एक नई विचारधारा प्रस्तुत की। मृत्यु के संदर्भ में उसने व्यक्ति के तीन स्तरों की कल्पना की। ये स्तर हैं Physical Plane, Astral Plane और Etherial Plane। उसने कहा मृत्यु की स्थिति निद्रा जैसी है जहाँ व्यक्ति Physical से उठकर Etherial Plane तक आ जाता है पर उसका Physical से सम्बन्ध बना रहता है। इसी से भौतिक स्तर पर हुए अनुभव की अनुभूति वह कर लेता है पर मृत्यु में Physical और Etherial का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है और आत्मा Etherial से Astral तक ही विचरण कर सकती है, Physical तक नहीं आ सकती। यही मृत्यु की अवस्था है। भारतीय दर्शन में भी आत्मा के स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीन स्वरूपों की कल्पना की गई है।

नीरज जी इनमें मुख्यतः गीता, चकवस्त और Lead Beater से प्रभावित हैं। चकबस्त की भाँति वह जीवन को पंचभूत तत्वों का मिश्रण मानते हैं।

पर उस सम्बन्ध में उनकी सबसे नवीन धारणा पंचभूतों का ऋण चुकाने के विषय में है। वह कहते हैं मृत्यु कुछ नहीं, सिर्फ पंच तत्त्वों से ऋण लिया है उसे चुका देने का ही नाम है। मृत्यु की यह समाजवादी व्याख्या है। यहाँ कवि अग्नि, जल, वायु, आकाश आदि का मृत्यु द्वारा ऋण चुकाने की बात कहता है :

सूरज से प्राण धरा से पाया है शरीर
ऋण लिया वायु से है हमने इन साँसों का,
सागर ने दान दिया है आँसू का प्रवाह
नभ ने सूनापन विकल विधुर उच्छ्वासों का,
जो जिसका है उसको उसका धन लौटाकर
मृत्यु के बहाने हम ऋण यही चुकाते हैं
इसको ही कोई कहता है अभिशाप ताप,
वरदान समझ कुछ इस पर खुशी मनाते हैं।

नीरज आत्मा और चिर विराट की कल्पना को भी स्वीकार करते हैं। उपनिषद् की एकोऽहम बहुस्यामि की धारणा को भी नीरज ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। उन्होंने कहा है :

वह चिर विराट फिर भी इस मिट्टी के अन्दर
बन्दी होकर अपनी असीमता को समेट,
बस सृष्टि प्रसारण के हित करता अनमांग,
मिट्टी को अपने अश्रु, हास अनमोल भेंट,
क्रीड़ा करने को नई नई वह भाँति भाँति,
बुनता है सपनों के सुन्दर रेशमी जाल,
कस्तूरी मृग सा फिर उसमें खुद बंध जाता,
अनुभव करने को संसृति की सीमा विशाल।

उनके मृत्यु गीत में वस्तुतः उनकी जीवन और मृत्यु के नाना पहलुओं के प्रति धारणाएँ संग्रहीत हैं। इसमें अनेक दर्शनों की प्रतिध्वनि है। आत्मा के आवागमन चक्र में नीरज मृत्यु को यतिविश्रामावस्था ही मानते हैं। जीवन की

निरंतर गतिमयता के बीच वही एक विश्रांतिस्थल है जहां से हम पुनः अपनी यात्रा पर चल देते हैं :—

जीवन क्या ? माटी के तन में केवल गति भर देना,
और मृत्यु क्या ? उस गति को क्षण भर यति कर देना।

मृत्यु गीत में यद्यपि मृत्यु ही व्यक्ति की अनिवार्य नियति के रूप में स्वीकृति है परन्तु चिन्तन का स्थान ही वहां महत्वपूर्ण है। मृत्यु की अमरता और निश्चितता का यह स्वर मृत्यु गीत के बाद की रचनाओं—आसावरी, बादर बरस गयो, प्रांण गीत तक में कभी-कभी उभर कर आ जाता है, परन्तु वहां उसका प्रभुत्व नहीं है वह जीवन की एक खास निराशा के ही निर्माण हैं, जो कवि को कभी-कभी ही अभिभूत करती है। आसावरी का कवि भी मृत्यु से भयभीत है। इसलिए मिलन पर्व में भी वह मृत्यु—विदाक्षण को भूल नहीं पाया है। 'बादर बरस गयो' का कवि तो जीवन को ही 'मरण त्योहार' के रूप में स्वीकार करता है। वह कहता है :

आंजे हुए नींद का काजल सब अंखियां कजरारी,
आलिंगन कर रही मृत्यु का बाहें प्यारी प्यारी,
कोई कहीं रहे पर सबकी मंजिल एक यहां पर
रे! मघंट की ओर मुड़ी हैं राहें जग की सारी,
एक दिवस आती है सबके जीवन में मजबूरी
और एक दिन मिट्टी सबका करती है शृङ्गार।
जन्म है यहां मरण त्योहार।

इसी संग्रह में संग्रहीत कब्र है धरती कफन है आसमान आदि कविताओं में भी कवि की निराशा की चरम परिणति—मृत्यु के प्रति विश्वास का स्वर झंकृत है। प्रांण गीत की कविताओं—आदमी है मौत से लाचार, इस तरह तय हुआ सांस का यह सफर—में भी मृत्यु की अजेयता की प्रतिध्वनि मिलती है। उन्होंने मृत्यु को विजेता और मनुष्य को विजित के रूप में स्वीकार किया है।

धूल को मरघट सदा प्यारा लगा है
अमृत को तन घट सदा कारा लगा है,
चल रहा है गीत आंसू की डगर में,
मृत्यु से हारा सदा जीवन समर में,
मत कहो रणक्षेत्र है संसार,
हारता आया मनुज हर बार,
आदमी है मौत से लाचार,
रो रहा है इसलिए संसार ।

जीवन के हर संघर्ष, हर विघटन और हर निर्माण के बाद भी केवल मृत्यु ही सत्य रहती है । इसी तथ्य को गोट और शतरंज के माध्यम से कहा गया है ।

एक दिन एक बोली पिटी गोट यूं—
एक मौका अगर तू मुझे और दे,
मान सच यह कि बाजी बदल दूं अभी,
हार को जीत से, जीत को हार से,
सुन खिलाड़ी प्रथम बार झिझका जरा,
फिर बदल गोट वह चाल चलने लगा,
पर हुआ खेल वह भी खतम इस तरह
गोट पिटती रही, चाल चलती रही ।

इतना सब होते हुए भी नीरज मृत्युवादी नहीं हैं । उनका मृत्यु की अजेयता का स्वर क्षणिक है किन्हीं विशेष परिस्थितियों और विवशताओं से उत्पन्न यह स्वर यद्यपि क्षणिक है तथापि प्रभाव में अद्वितीय है, और इसकी प्रभावशीलता का कारण है नीरज की अनुभूति की सच्चाई और तन्मयता की पूर्ण सामर्थ्य । उन्होंने चाहे मृत्यु का गीत गाया हो, चाहे जीवन का, चाहे विरह का राग आलापा हो चाहे मिलन का, सभी अभिव्यक्त होकर हृदय पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं यहां भी यद्यपि हम उनके मृत्यु-दर्शन से पूर्णतः सहमत नहीं होते

पर भावाभिभूत हुए बिना रहना भी असम्भव हो जाता है। यह उनकी कलम का जादू है जो हर भाव, हर चिन्तन को उत्कृष्ट बना देता है। मृत्युगीत का कवि निराशा के घनीभूत क्षणों में इतना निराश है कि गति के लिए मृत्यु की ओर ही बढ़ने लगता है क्योंकि वहां और सारे द्वार बन्द हैं। पर यह उसकी सहज स्वभाविक गति नहीं है इसी कारण मृत्यु गीत के साथ साथ जीवन गीत भी संग्रहीत है। और अन्य कविताओं में भी उसका पूर्ण विरोध मिल जाता है। उनकी धारणाओं के इस विरोध का कारण उनके जीवन-दर्शन को ही है। वह मूलतः कवि हैं दार्शनिक नहीं, इसलिए जीवन ने जब जो प्रतिक्रिया उनमें उत्पन्न की, उनकी कविता उसी राग से अनुरंजित हो गई। विरोधी परिस्थितियों के निर्माण ने कविता की विचारधाराओं में भी विरोध उत्पन्न कर दिया है।

नीरज के मृत्यु विषयक दर्शन का सबसे बड़ा योग यह है कि वह व्यक्ति को अहं की कारा से मुक्त कर परम तक ले जाता है। व्यक्ति को वह समाज और विश्व से परिचित करा देता है। सन्तों ने संसार को मृत्यु का भय दिखाकर निराशा या निवृत्ति की ओर मोड़ा था पर नीरज ने मृत्यु को अमरता दिखाकर मानव को मानव की ओर अग्रसर किया है। सन्तों का मृत्यु-दर्शन निवृत्ति परक था तो नीरज का प्रवृत्ति परक। उनकी मृत्यु के प्रति विश्वास की धारणा मनुष्य को मनुष्य के निकट ले जाती है सभी नश्वर प्रतिबन्ध समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति विश्व बन जाता है। और इस तरह यह 'मृत्युवादी' दर्शन भी उदात्त बन जाता है। कहते हैं—

> लेकिन इसका अर्थ नहीं है कभी दोस्त !
> केवल तुम अपने लिए जियो, जग को भूलो,
> तुम जलो जहां हो जाय प्रकाशित वहां धरा,
> मधुमय हो सारा विश्व अभी यदि तुम फूलो,
> हम-तुम पर, जग पर, जीवन पर, हर मानव पर,
> जग क्या ? जग की मिट्टी तक का भारी ऋण है,
> है लेना हमको उचित तभी तक जग-मग से,
> जब तक बदले में देने को कुछ कंचन है।

यह मानव प्रेम उनके मृत्यु गीत का नवीन व गौरवमय सन्देश है। वस्तुतः यह उनकी अभिव्यक्ति का कौशल है जो उनके सामयिक सत्य का मन पर स्थायी प्रभाव छोड़ता है।

समय के साथ उनकी यह धारणाएँ बदल गई हैं। मृत्यु की अजेयता के ऊपर व्यक्ति की जय को उन्होंने स्वीकार कर लिया है। इसीलिए दर्द दिया है आदि अन्य रचनाओं में वह पूर्णतः आशावादी चिन्तक हैं। आत्मा को वे सर्वोपरि मानते हैं और मानव पर उन्हें पूर्ण आस्था है। दर्द दिया है में उन्होंने 'अहम् ब्रह्मोस्मि' को भी स्वीकार किया है :

संसार न था जब, तब मैं था संसार स्वयं,
जब था न पवन तब मैं था एक अनंत श्वास,
जब नहीं जले थे अम्बर में रवि शशि उडुगन,
तब एक दीप बन मैं ही था जग का प्रकाश।

यहाँ आकर निराशा और मृत्यु का घना कुहासा छट गया है और स्वच्छ आकाश दिखने लगा है, एक उद्दाम सामाजिक चेतना जाग्रत हुई है जहाँ सर्वत्र मानव का वैभव, मानव की प्रतिष्ठा है।

नीरज का यह मृत्यु सम्बन्धी दृष्टिकोण वस्तुतः उनके मृत्यु विषयक मान्यता की भाँति उनके काव्य प्रवाह की एक 'यति' ही है यानी एक विश्राम स्थल, जहाँ से मानव प्रेम का पाथेय लेकर कवि पुनः अपनी यात्रा में अग्रसर हुआ है। मृत्यु एक पड़ाव मात्र है मंजिल नहीं, जो अन्ततः कवि की गति—चलते रहने की सूचना ही दे पाता है।

———

नीरज की सामाजिक प्रगतिशीलता

व्यक्ति एक खिड़की है जिसमें से मकान में होने वाली हर चहल पहल, हर घुटन को देखा जा सकता हो। चाहे वहां मेलों की रंगीन रौनक हो या दीवाली की जगमगाहट हो, चाहे वहां टूटी चारपाई पर लेटा दमे और खांसी की आवाज हो, चाहे अंधेरे कमरों में भटकती दीपक की रोशनी हो या फिर वहां बीमार सोफों और बदरंग डाइनिंग टेबिल-चेयरों पर बैठी सभ्यता की रंगीन गुड़ियां या प्लास्टिक के बबुए हों—खिड़की हर चीज को नजर में बांध सकती है, हर चीज को दिखा सकती है। किसी भी प्रबुद्ध कवि की कविता फूलों का एक ऐसा गुलदस्ता है जो खिलते महकते गुलाबों को तो जगह देता ही है, बीमार और मुरझाए फूल पत्तियों को भी सजाकर रखता है। किसी भी कविता में कवि यानी सिर्फ व्यक्ति ही नहीं होता, वरन वे संस्कार, वे परिस्थितियां और वे मान्यताएँ भी होती हैं जो समाज उसे देता है पोषण करने के लिए या प्रतिक्रिया में उखाड़ फेंकने के लिए, किसी भी रूप में सही समाज वहां उपस्थित होता जरूर रहता है।

नीरज का कवि व्यक्तित्व भी उन सब सड़ी-गली मान्यताओं की कीचड़ में खिलने वाली सभ्यता के रंग-रूपों, मंदिर मस्जिद या बिहारी-बंगाली के नाम पर होने वाली अश्लील लूट खसोटों, शोषण और दमन के ऊपर खड़ी होने वाली ऊँची अट्टालिकाओं से प्रभावित हुआ हो। और उसने उन सब अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई हो जिनसे मानवता पीड़ित होती है। नीरज के काव्य में समाज की हर हलचल, उसके हर पहलू की हर विषमता का चित्र मिल जाता है। नीरज की यह सामाजिक सजगता इस बात का प्रमाण देती है कि वह जीवन और समाज से कटे हुए एक व्यक्तिवादी कवि नहीं हैं जिसकी बरसाती के ऊपर से समाज की हर धूप, हर गर्मी, हर बारिश फिसल जाती है उनका हृदय धरती-सा संवेदनशील है जो हर धूप, गर्मी और बारिश को अपने में

जमा लेता है और प्रतिक्रिया में कहीं गुलाबों की फसल तैयार करता है तो कहीं कैक्टसों का जंगल। कभी वह मनुष्य की ऐवरेस्ट विजय के गीत गाता है तो कहीं सांसों में आंधी तूफानों को भरकर गाता है।

मैं विद्रोही हूं जग में विद्रोह कराने आया हूं,
क्रांति क्रांति का सरल सुनहरा राग सुनाने आया हूं।

प्रगति के सामान्यतः दो अर्थ हो सकते हैं एक तो प्रगतिशीलता के रूप में अर्थात् जो जीवन को उन्नति की ओर अग्रसर करे और द्वितीय मार्क्स के विचारों से सम्बन्धित वाद के रूप में। आधुनिक युग में प्रगतिवादी शब्द वस्तुतः उन्हीं लेखकों के लिए रूढ़ हो गया हो जो मार्क्स का साहित्यिक अनुवाद प्रस्तुत कर सकते हैं। मार्क्स का सिद्धांत द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित है जिसके संदर्भ से आधुनिक युग की विषमता और विघटन की व्याख्या की जा सकती है, उसको अस्वीकार किया जा सकता है। नीरज मार्क्स की इस सामाजिकता और मानववाद के समर्थक हैं। वे भी समान वितरण, न्याय और शांति के पक्ष में हैं परन्तु मार्क्स की क्रांति अर्थात् हिंसा के पक्ष में वह नहीं हैं। यद्यपि कुछ कविताओं में मार्क्स की क्रांति की ध्वनि भी है परन्तु उन पर गांधीवाद का प्रभाव अधिक व्यापक है। वे फूलों के विद्रोह की बात तो कहते हैं पर साथ ही यह भी कहते हैं।

सच मानो निश्चय विजय तुम्हारी ही होगी,
दुश्मन को अपना हृदय ज़रा देकर देखो।

यही मार्क्स से उनका अन्तर है। जिस लक्ष्य पर मार्क्स क्रांति और हिंसा के द्वारा पहुँचना चाहता है उसी विश्व बंधुत्व, साम्य और शांति के लक्ष्य पर नीरज प्रेम और करुणा द्वारा पहुँचना चाहते हैं इस तरह मार्क्स से किन्हीं अंशों में पूर्णतः प्रभावित होने पर भी उन्हें मार्क्स का साहित्यिक संस्करण नहीं कहा जा सकता। और इस प्रकार उनको प्रगतिवादी नहीं, प्रगतिशील ही कहा जा सकता है। उनकी सामाजिक चेतना उनको मार्क्सवाद के निकट लाती है परन्तु विश्वप्रेम और विश्व बंधुत्व का आदर्श उन्हें इससे पृथक् कर देता है। यहां हम मुख्यतः उनकी इसी प्रबुद्ध और प्रगतिशील सामाजिकता की चर्चा करेंगे।

नीरज व्यक्ति से अधिक महत्व समाज को देते हैं। उनकी यह सामाजिक चेतना इतनी प्रबुद्ध है कि कवि को नितांत वैयक्तिक क्षणों में भी समाज भूल नहीं पाया है। प्रायः सभी पातियां प्रेम से आरम्भ होकर सामाजिक विषमता पर समाप्त होती हैं। समाज में फैली अनाचार और अत्याचार की गंध उन्हें किसी गुनाह को गले लगाने का समय ही नहीं देती। समाज पगपग पर उन्हें पुकार उठता है—

मुफलिसी भूख गरीबी से दबे देश का दुःख,
डर है कल मुझको कहीं खुद से न बागी कर दे,
जुल्म की छांह में दम तोड़ती सांसों का लहू,
स्वर में मेरे न कहीं, आग अंगारे भर दे।
चूड़ियां टूटी हुई नंगी सड़क की शायद
कल तेरे वास्ते कंगन न मुझे लाने दें,
झुलसे बागों के धुंआ खाये हुये पात कुसुम
गोरे हाथों में न मेंहदी का रंग आने दें।

समाज की यह गरीबी और भुखमरी उन्हें सपने भी नहीं देखने देती। उनके रंगीन सपनों में समाज का दुःख दर्द Night-mare की तरह करवटें बदलने पर मजबूर कर देता है। जीवन में हर ओर उन्हें अभाव, अधूरे सपने, अपूर्ण इच्छाएँ, गिरती हुई झोंपड़ियाँ और ढहते हुए महल ही दिखाई देते हैं। दुख और अतृप्ति हर रास्ते पर एक साथ कदम मिलाकर खड़ी हुई हैं, चाहे वह महल का रास्ता हो या झोंपड़ी का—

जिस दरवाजे गया, मिले,
बैठे अभाव कुछ बने भिखारी,
पतझर के घर गिरवी थी मन
जो भी मोह गई फुलवारी,
कोई था बदहाल धूप में
कोई था गमगीन छांव में

महलों से कुटियों तक दुःख की
थी हर सुख से रिश्तेदारी।

हर रोशनी, हर दीप पर अंधेरे का काला साया लहराता दिखाई देता है। आज की पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था अत्यन्त दुर्बल है और समाज का भार संभालने में असमर्थ है। सिर्फ बाह्य नहीं, व्यक्ति का अन्तर भी जर्जर है और पीड़ित है। जीवन के सुख और दुःख पर भी स्वर्ण का पहरा है। हर ओर इंसान के रूप में आदमी के आँसुओं की गीली कहानी ही घूमती नजर आती है—

गीले थे रूमाल, अश्रु की,
पनिहारिन हर एक नजर थी,
शबनम की बूँदों तक पर
निर्दयी धूप की कड़ी नजर थी।
निरवंशी थे स्वप्न, दर्द से
मुक्त न था कोई भी आंचल
कुछ के चोट लगी बाहर थी
कुछ के चोट लगी भीतर थी।

चारों ओर कवि विनाश के इस तांडव को देखता है। हर ओर बेबसी, मजबूरी और निर्धनता की प्रदर्शनी ही कवि की आँखों को खींचती है।

इस क़दर बढ़ रही बेबसी बहारों की
फूलों को मुस्काना तक मना हो गया है।
इस तरह हो रही है पशुता की पशु क्रीड़ा,
लगता है दुनिया से इंसान खो गया है।

निर्धनता, मजबूरी, बेकारी और आर्थिक असमानता का यह अश्लील प्रदर्शन कवि को क्रांतिकारी भी बना देता है वह सारे समाज को बदल डालना चाहता है—

यह भुरखा नुमाइश भूखों की, यह उजड़े चमन बेकारों के
जूठन पै सड़क की जीते हुए शहजादे यह सुर्ख बहारों के

यह होली खून पसीने की, नीलामी ये हुस्न हसीनों की,
बेज़ार न हो, बेज़ार न हो, यह सारा फ़साना बदलेगा,
गंगा की कसम, जमना की कसम यह ताना बाना बदलेगा।

देश के करोड़ों पढ़े लिखे बेकार नौजवानों के टूटते सपने मिटती आशाएं व जवानी में वृद्ध हो जाने वाली उम्मीदें उन्हें आजाद भारत की विडम्बना की प्रतिमूर्तियां लगती हैं। और कवि क्रांतिकारी घोषणा करता है।

है आज की योग्यता सिफारिश तुम अपनी ये डिगरियां जला दो
इन कालिजों पर अंगारे फेंको, इन सार्टिफिकेटों को जा बहा दो
न पढ़ने लिखने की है कुछ जरूरत, न कम्पटीशन के कुछ मानी हैं।
तुम्हें मिलेगी हरेक सर्विस किसी मिनिस्टर से खत लिखा दो।

यह सिफारिशी भाईचारा वाद पर एक तीखा व्यंग्य है जिसके कारण बहुत सी योग्य प्रतिमाएं नष्ट हो रही हैं। देश की गरीबी और हर ओर फैली विषमता कवि को विद्रोही बना देती है। भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है—कविता में कवि ने इसी विद्रोह को स्वर दिया है।

मासूम लहू की गंगा में आ रही बाढ़
नादिरशाही सिंहासन डूबा जाता है,
गल रही बर्फ-सी डायर की काली कोठी
एटम को भूखा पेट चबाये जाता है,
निकला है नभ पर नये सवेरे का सूरज
हर किरन नई दुल्हिन सी सेज सजाती है
हो सावधान ! संभलो ओ ताज-तख्त वालो!
भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।

परन्तु यह विद्रोह और क्रांति कवि को कभी-कभी ही आकर्षित कर पाये हैं अधिकतर उन्होंने प्रेम के बल पर विजय पाने की कोशिश की है। पर पूंजीवादी सभ्यता के वह विरोध में ही है। उसके खोखलेपन को उसने कई जगह दिखाया है। पूंजीवादी सभ्यता में श्रम का महत्व श्रमिक का नहीं वरन्

पूँजीपति का है। एक ओर अधपेट रहकर निरन्तर चलने वाला हथौड़ा है तो दूसरी ओर अन्याय के काठ-के पांवों पर खड़ा वैभव है। हथौड़ों ने ही इन काठ के पांवों को तराशा है। नीरज कहते हैं—

> यूँ चलती थी हाट कि बिकते
> फूल, दाम पाते थे माली
> दीपों से ज्यादा अमीर थी,
> उँगली दीप बुझाने वाली।
>
> और यहीं तक नहीं, आड़
> लेकर सोने के सिंहासन को
> पूनम को बदचलन बताती
> थी मावस की रजनी काली।

'राजमार्ग के पद यात्री' व जीवन जल कविता भी अन्याय के विरुद्ध एक गूँजता हुआ स्वर है। पूँजीवाद के स्थान पर समाजवादी सभ्यता का एक स्वप्न है। ये वर्ग संघर्ष की कवितायें हैं आज विषमता और अनाचार का साम्राज्य सर्वत्र स्थापित है। पूँजीपति श्रम का अनादर अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। इसीसे मात्र स्वर्ण के बल पर अनेक अत्याचार किया करते हैं—

> कोड़े खाकर जिये पसीना पूँजी के दरबार में
> दीपक को डाँटे अँधियारा देखो भरे बजार में
> पालिश करता हुआ बूट पर घूमें सड़कों पर बचपन
> बेकारी इस कदर कि कल पटरी पर सोया चंद्रबदन।

यही नहीं कि आज की जर्जर सामाजिक व्यवस्था में सिर्फ पूँजी और श्रम का ही संघर्ष है वरन् चमक के भ्रम में स्वर्ण को ताम्र और ताम्र को स्वर्ण भी समझा गया है। कोयल को कौवे का अनादर भी दिया गया है। कला भी इस पाषाण युग में उपेक्षित है। स्वर्ण के आगे उसे भी झुकना पड़ा है—

> स्वर्ण की झंकार ने ऐसा किया छल समय से
> चातकों की प्यास तक बाजार में बिकने लगी है,

सूलियों पर भी नहीं गर्दन हुई जिसको कभी ख़म,
वह क़लम कुछ कुतियों के सामने झुकने लगी है।

वह कला और कविता वाल्मीकि और तुलसी की वाणी को देव वाणी बनाती थी आज धन के दैत्य के सम्मुख चारण का कार्य करती है—

मौसम का यह हाल कि
बासंती रितु में कलियां उदास हैं
गुनी गुलाबों की बस्ती में
शासक बन बैठे पलास हैं।
जिनकी उंगली थाम सीखता
है चलना हर स्वर्ग धरा पर
वाल्मीकि के यती श्लोक वे
सिंहासन के बने दास हैं।

विषमता के इस युग में कला का यह अनादर कवि को विक्षुब्ध कर देता है।

इस पूंजीवादी युग में केवल कला और काव्य की ही तस्वीरें नहीं बदली हैं; न्याय, धर्म कर्म, रीति-नियम सभी की शक्लों में असमता और अन्याय का रंग ज्यादा गहरा हो गया है, अक्सर इतना गहरा कि उसे पहचान पाना तक असम्भव हो जाता है। न्याय के स्थान पर अब अन्याय ही दिखाई देता है—

ओढ़ कर क़ानून का चोग़ा खड़ी अंगेजशाही
न्याय का शव तक कचहरी में नजर आता नहीं है
मुश्किलों का खर्च इतना बढ़ गया है जिंदगी में
जन्मदिन पर भी खुशी कोई मना पाता नहीं है।

अथवा

बदले ज्यों तारीख़ रोज बदले चहरे क़ानूनों के,
गांधी जी बस बने रह गये हैडिंग कुछ मज़मूनों के

ऐसी घोर विषमता फैली, ऐसे घने तने जाले।
इस पर नशा चढ़ा दारू का, उसे जहर तक के लाले।

सिर्फ न्याय ही नहीं आज के युग में व्यक्ति की शक्ल भी बदल गई है। मानव का मूल्य शून्य के बराबर है और आदमी की जगह अक्सर पद, श्रेणी, धर्म और वर्ग ही देखने को मिलते हैं। व्यक्ति तो अक्सर गटरखानों में कुत्तों की मौत मरा करते हैं। जीवन की विवशता ने हर चीज का मानदण्ड पैसा बना दिया है इसलिए भावनाओं तक का व्यापार होने लगा है—

राज बड़ा पैसे का ऐसा बिके कफन तक लाशों का
हो नीलाम आँख का पानी जैसे टिकट तमाशों का,
कुत्ते जैसे मरें, आदमी मरे गटर में खानों में,
जुल्मों का यूँ जोर रुलवाई बंद हो गई थानों में।

प्रवर्तन के इस युग में शान्ति और युद्ध की शक्लें भी बदल गई हैं। व्यक्ति के बीच घृणा की गहरी खाइयाँ बन गई हैं। जीवन की प्रसन्नता आज स्वर्ण की दासी बनकर रह गई है—

व्यक्ति व्यक्ति के बीच खाइयाँ, लहू बिछा मैदानों में
घूम रहा है युद्ध सड़क पर शांति छिपी शमशानों में,
जंजीरें कट गईं मगर आज़ाद नहीं इनसान हुआ
दुनिया भर की खुशी कैद है चाँदी जड़े मकानों में।

सिर्फ अर्थ के नाम पर ही नहीं धर्म के नाम पर भी यह विषमता फैली हुई है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजे और शिवाले सब अपने-अपने धर्म की श्रेष्ठता को इस प्रकार बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं कि उनके समक्ष मानवता बहुत छोटी, बहुत हेय हो जाती है—

बिकी-बिकी सब ओर मची है आने और दो आने पर
अस्मत बिके गलीचों पर तो प्यार बिके दूकानों पर,
डगर-डगर पर मंदिर मस्जिद कदम-कदम पर गुर-द्वारे,
भगवानों की बस्ती में है जुल्म बहुत इंसानों पर।

मन्दिर मस्जिद की यह भिन्नता व्यक्ति-व्यक्ति के बीच एक नफरत की दीवार खड़ी कर देती है। ये हमारे स्वार्थ ही हैं जिन्होंने एक ही आंगन के दो टुकड़े कर दिये हैं, एक ही अनन्त को राम रहीम में विभक्त कर दिया है। अन्यथा मन्दिर मस्जिद, वेद कुरान, राम रहीम में कोई अन्तर नहीं है—

> मूर्ख पुजारी है वह जो कहता है मंदिर ईश्वर का घर
> मुल्ला भी वह बहका है जो कहता वह मस्जिद के अंदर,
> मंदिर मस्जिद में ही उनका ईश्वर और खुदा होता तो,
> मंदिर में बन सकती मस्जिद, मस्जिद में बन सकता मंदिर।

पर व्यक्ति के स्वार्थ ने इसमें भेद कर लिया है। धर्म के नाम पर भी सर्वत्र व्यापार ही हो रहा है। इसीलिए नीरज मन्दिर मस्जिद को 'मजहब के पण्डों की दुकान' मानते हैं। सिर्फ इनकी व्यक्ति को भ्रमित करने, धोखा देने और ठगने की प्रणाली ही में अन्तर है, कोई कुरान की आयतों के नाम पर मानवता को लूट रहा है तो कोई वेद की ऋचाओं की आड़ से कलुष फैला रहा है। कोई भजन कीर्तन के नाम पर मानव को भ्रमित कर रहा है तो नमाज के माध्यम से असत्य का व्यापार कर रहा है। सर्वत्र धर्म के नाम पर अनाचार और अत्याचार ही दिखाई देता है—

> जितनी देखी दुनिया सबकी देखी दुल्हिन ताले में,
> कोई कैद पड़ा मस्जिद में, कोई कैद शिवाले में।
> किसको अपना हाथ थमा दूं, किसको अपना मन दे दूं,
> कोई लूटे अँधियारे में, कोई ठगे उजाले में।

आज की दुनिया में वर्ण और भाषा की भिन्नता का भी बोलबाला है। आज काले और गोरे का भेद मनुष्य को एक ही साथ फलते फूलते हुए भी दो दायरों में बांध रहा है। गोरा रंग उच्चता का प्रतीक है हर वैभव, हर ऊँचाई का अधिकारी है तो काला रंग जीने का अधिकारी भी नहीं है। वस्तुतः यह मानवता को बांटने के प्रकार मात्र है पर इनसे मनुष्यता विभक्त नहीं हो सकती। यह

मात्र दृष्टि का अन्तर है जिसने एक ही बाग के फल फूलों को अलग-अलग कर दिया है। नीरज ने काले-गोरे वर्णों के नाम पर फैले सामाजिक वैषम्य की चर्चा भी की है—

यह तो कजराई का आशिक उसको गरब गुराई पर,
यह मोहा मटमैले पन पर, वह रीझा चटकाई पर,
उतने रंग कि चश्मे जितने, जितने दृग उतने शीशे,
दुनिया की तस्वीर टंगी है, सुरमा और सिलाई पर,
इधर अंधेरी, उधर अंधेरी
आंख आंख मोतिया गुहेरी
कुयला भई रतन की ढेरी
फिर भी रंगों के मेले में, खोया सकल जहान है।
दिन दिन जब कुछ और बड़ा होता जाता शमशान है।

उनकी 'अफ्रीका की रंग भेद नीति के नाम पाती' में भी इसी समस्या का विवेचन है। वर्ण भेद के आधार पर अफ्रीका में हो रहे अत्याचारों की कहानी है। इस कविता का कथ्य है। कवि इस वर्ण भेद के व्याज से हो रहे अनाचार के विरुद्ध प्रेम और विश्वास का साम्राज्य स्थापित कराने का इच्छुक है। वह कहते हैं।

चमड़े का रंग मनुष्य मनुजता को बांटे,
यह है जघन्य अपमान प्रकृति का मानव का,
धरती पर घृणा जिये मर जाये प्रीति प्यार,
यह धर्म मनुज का नहीं, धर्म है दानव का।
× × × ×
यह रंग बिरंगा विश्व एक है गुलदस्ता
जिसकी विभिन्नता ही अभिन्नता सुन्दर है,
हम भले इसे काला, उसको गोरा समझें
हर एक कुसुम की कीमत यहाँ बराबर है।

अपनी भाषा के विषय में नीरज नितान्त प्रगतिशील हैं उनकी भाषा अत्यन्त सामाजिक है इसलिए वह भाषा भेद के नाम पर उत्पन्न सामाजिक वैषम्य के

प्रति भी कवि का रोष है। प्रेम वस्तुतः एक ऐसी भाषा है जिसे हर जाति, हर प्रांत का व्यक्ति समझता है पर इसे भूलकर वह बंगला, उड़िया, तामिल, तेलगु, हिन्दी, अंग्रेजी के झगड़े में ही लिप्त है और वैषम्य की खाई को दिन पर दिन और गहरी करते जा रहे हैं।

बंगाली को बंगला प्यारी, तामिल चाहे मदरासी,
पंजाबी गुरुमुखी उचारे, हिन्दी दिल्ली की दासी,
इसकी शहजादी अंग्रेजी, उसकी पटरानी संस्कृत,
मगर प्रेम की भाषा अब तक हाय! बनी है बनवासी।

प्रांतीयता के आधार पर फैले वैमनस्य और भेद के प्रति भी कवि उदासीन नहीं है। उसने भारत को एक बाग माना है जहां हर रंग के, हर वर्ण के फूल खिले हैं। अपनी कविता 'फूल' 'बाग' और 'गुलदस्ता' में उन्होंने इसी प्रांतीयता के ऊपर देश प्रेम की प्रतिष्ठा की है। उनका संदेश है:

हम भी गुलदान के यदि एक कुसुम बन जायें
जहां इस प्रांत की उस प्रांत को सह सकती हो,
हम भी रह सकते हैं, यह देश भी रह सकता है
भिन्नता में भी सदा एकता रह सकती है।

पिछले दिनों भारत पर हुए पड़ोसी और मित्र देश चीन के नृशंस आक्रमण ने भी उन्हें अपनी ओर प्रभावित किया है। एक जागरूक सचेतन व्यक्ति होने के नाते नीरज ने इस अनाचार और नृशंसता को भी भली-भांति पहचाना है। चीन के विश्वासघात और नृशंसता को उन्होंने इस भांति अंकित किया है:

जिससे नेह लगाकर हमने
अपनों तक से आंख चुराई
पीछे से आगे लाने को
खुद जिनकी पालकी उठाई

हो जाये बदनाम न जग में
कहीं हमारा साथी इससे
बार-बार घायल होकर भी
हमने अपनी चोट छिपाई

लेकिन वही पड़ोसी अपना आज भूलकर सारे रिश्ते,
प्रेम नगर को बांध हमारे घृणा नगर तक पहुँचा है।

चीनी दानवता के प्रवाह को रोकने में बांध बनकर सीमा पर अपनी आहुति देने वाले जवानों के प्रति भी उनके हृदय में अपार ममता है। अपनी एक कविता में अपनी इसी ममता और उसके कारण को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं :

कई बार तुम्हारी वीरता सुनकर
और तुम्हारी व्यथा कथा पढ़कर
मेरी आंख भर-भर आई है
और मैंने रोते-रोते
रात के एकांत में प्रभु से प्रार्थना की है
कि—वह मेरी कलम
और गीत
और मेरी खुद की बाकी उमर तुम्हें दे दे
मगर ऐसा इसलिए नहीं हुआ है
कि मैं कवि हूं
भावुक हूं
सामान्य से अधिक संवेदनशील हूं,
वरन् इसलिए कि
व्यक्ति व्यक्ति होते हुए भी देश है
और जाति, धर्म, भाषा की भिन्नता के बाद भी
सम्पूर्ण भारत की आत्मा एक है।

यह समस्त कविताएं नीरज की प्रबुद्ध सामाजिक चेतना का स्पष्ट उद्घोष करती हैं। पर कवि केवल सामाजिक विषमताओं, अत्याचारों एवं अनाचारों से ही प्रभावित नहीं हुआ है जहाँ भी मानवता विजयी हुई है वहाँ भी उसने उसके यशोगीत भी गाये हैं। एशिया के देशों की आजादी पर, ऐवरेस्ट विजय पर लिखे गये गीतों में हर्ष और उल्लास का यही स्वर गुंजित है। ऐवरेस्ट विजय पर कवि का उल्लास इस रूप में मुखर हुआ है।

आखिर मुट्ठी भर धूल पहुँच ही गई वहाँ
जा सके न पाँव जहाँ इतिहास पुराणों के
आखिर धरती के बेटे ने गूंथ ही दिये
बर्फीले बाल पहाड़ों के, चट्टानों के।
सिंदूर चूम ही लिया धरा के माथे का
आखिर श्रम के फौलादी खून-पसीने ने,
हिम की शहज़ादी को मुंदरी पहना ही दी,
आखिर कुछ पानी वाले एक नगीने ने।

इस प्रकार नीरज का समस्त काव्य उनकी सामाजिक चेतना की सजगता का जीवित उदाहरण है। जीवन जहाँ भी पीड़ित हुआ है, दलित हुआ है, या विजयी हुआ है—सदैव कवि ने उसे देखा-परखा है और काव्य में अंकित भी किया है। समाज की हर गंदगी, रूढ़ि गर्हित परम्परा, हठधर्मिता के वे विरोधी हैं और व्यक्ति और मानव की विजय के उद्घोषक हैं। यद्यपि उनसे बहुत से प्रतिक्रियावादी तत्त्व भी मिल जाते हैं परन्तु अंततः वह प्रगतिशील ही अधिक हैं। कोई भी कवि अपने युग से असम्पृक्त नहीं रह सकता। इसलिए उसमें अनेक प्रतिक्रियायें अनेक विरोध और अनेक विश्वास समय-समय पर उत्पन्न होते रहते हैं। नीरज में जबकि प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की छाया भी कहीं-कहीं मिल जाती है पर वह मूलतः प्रगतिवादी हैं। और मार्क्स के शिष्य न होते भी उसके काफी निकट हैं। उनकी सामाजिकता अनेक रूपों में प्रकट हुई है। वस्तुतः वह एक ऐसे कवि हैं जिनका समस्त काव्य प्रमाण है उनकी ही एक पंक्ति का :

फूल बाग का पीछे पहले उपवन का शृङ्गार है।

नीरज के काव्य में उदात्त तत्व

लांगिनुस (लोंजाइनस) ने एक स्थान पर कहा है : 'औदात्य महान आत्मा की प्रति ध्वनि है।' वस्तुतः हृदय की विशालता ही कविता को उदात्त रूप में प्रस्तुत कर सकती है, कवि के निकट व्यक्ति और समाज सबकी विकृति परिष्कृत होकर महान् और उज्जवल बन जाती है। कवि एक शिल्पकार है जो जमीन की धूल, गर्द, कंकड़, पत्थरों से एक शिव और सौन्दर्य से मंडित मूर्ति की गढ़ना करता है और सिर्फ उसे गढ़ता ही नहीं, उसमें अपनी 'स्निग्ध पियूषी धारा' के द्वारा प्राण संचार भी करता है। यों तो काव्य में हर विकृति उदात्त होकर ही अभिव्यक्त होती है परन्तु हर काव्यात्मक अभिव्यक्ति उदात्त काव्य की श्रेणी में नहीं आ सकती। उदात्त का अर्थ केवल उदात्तीकरण या केवल परिष्कार नहीं है, वरन् वह 'अभिव्यक्ति की विशिष्टता और उत्कृष्टता' का नाम है। इसलिए हर काव्य परिष्कृत होकर भी औदात्यपूर्ण नहीं हो सकता। औदात्य काव्य के अनेक अन्तरंग एवं बहिरंग गुणों पर आधारित रहता है। नीरज के काव्य का कमल भी समाज और व्यक्ति की हर कीचड़, हर दलदल पर खिला हुआ है। समाज की हर विकृति, हर अधूरापन वहाँ अपनी परिष्कृति और पूर्णता की खोज करता है। कविता के सम्बन्ध में उनके अपने शब्द भी इसका समर्थन करते हैं :

> **कविता एक चिड़िया है**
> **जो अपना घोंसला तो**
> **पेड़ की ऊँची से ऊँची शाख पर बनाती है**
> **लेकिन जो अपना भोजन**
> **धरती के गंदे से गंदे कोनों में खोजती है।**

उनका काव्य केवल इस गंदगी और विकृति का ही उदात्तीकरण नहीं करता वरन् सही अर्थ में अभिव्यक्ति की विशिष्टता एवं उत्कृष्टता' के द्वारा

ग्रौदात्य का प्रतिपादन भी करता है। उनकी कविताग्रों में ग्रौदात्य के सभी गुणों का सुन्दर समावेश हुग्रा है।

लोंगिनुस ने उदात्त का प्रमुख ग्रन्तरंग कारण महान् धारणाग्रों की क्षमता ग्रौर उद्दाम प्रेरणा प्रसूत ग्रावेग को माना था। महान् धारणाग्रों की क्षमता को वह महान् कलाकार की सबसे बड़ी स्वीकृति मानता है। उसने कहा 'सच्चे वाग्मी (कलाकार) को निश्चय ही क्षुद्र ग्रौर हीनतर भावों से मुक्त होना चाहिये क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों ग्रौर विचारों में ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं ग्रमर रचना कर सके।' नीरज के काव्य में भी हमें कहीं कभी कोई क्षुद्र ग्रथवा हीन बात देखने को नहीं मिलती। उनके काव्य की सभी भावनाएँ सभी विषय महान हैं। प्रेम की शारीरिकता भी उदात्त होकर विश्व प्रेम ग्रथवा रहस्यभावना के निकट पहुँच गई है। उनकी 'एक तेरे बिना प्राण ग्रो प्राण के' ग्रादि गीतों में इसी तथ्य की स्वीकृति है। नीरज के काव्य में ग्रगर कहीं चुम्बन का वर्णन है तो वह भी उदात्त होकर ग्राया है। उसमें मांसलता नहीं है वरन् वह दिव्य प्रेम का संदेश बन गया है जो उन्हें व्यक्ति से विश्व तक ले जाता है :

दो गुलाब के फूल छू गये जबसे होठ उपावन मेरे,
ऐसी गंध बसी है मन में सारा जग मधुबन लगता है।

तुम्हें देख क्या लिया कि कोई
सूरत दिखती नहीं पराई,
तुमने क्या छू लिया, बन गई,
महाकाव्य गीली चौपाई।

यह उदात्तता कवि के हृदय की विशालता का परिचय देती है। लोंगिनुस कहता भी है—'महान शब्द उन्हीं के मुख से निसृत होते हैं जिनके विचार गम्भीर ग्रौर गहन हों।' नीरज के काव्य की महानता में भी उनके गम्भीर चिन्तन ग्रौर दर्शन का ग्राधार है। उनका हर विचार भव्य ग्रौर महान रूप में ही प्रस्तुत होता है। व्यक्तिगत पीड़ा—भौतिक स्तर पर सही गई या मानसिक स्तर पर ग्रनुभूत की गई—सभी को उन्होंने उदात्त रूप में लिया। बड़े से बड़े

अपराधों को क्षमा कर देना उनकी आत्मा की उदारता को प्रकट करती है। कानपुर की पाती में डी. ए. वी. कालेज को उन्होंने अन्यायकर्ता माना है पर साथ ही उनकी उदारता कहलवाती है :

> और ऋषियों के नाम वाला वह नामी कालिज,
> प्यार देकर भी न्याय जो न दे सका मुझको,
> मेरी बगिया की हवा जो तू इधर से गुजरे,
> कुछ भी कहना न बस सीने से लगाना उसको।
> क्योंकि वह ज्ञान का एक तीर्थ है जिसके तट पर
> खेलकर मेरी कलम आज सुहागिन है बनी,
> क्योंकि वह एक शिवाला है जिसकी देहरी पर
> होके नतशीश मेरी अर्चना हुई है धनी।

अन्याय के प्रति यह क्षमा उदात्त की ही स्वीकृति है। उनकी आत्मा इतनी विशाल है कि व्यक्ति की पीड़ा वहाँ विश्व की पीड़ा बनकर आती है। मानव मात्र के सुख-दुःख में उनका व्यक्तिगत सुख-दुःख लय हो जाता है। उनका 'स्व' 'पर' के लिए समर्पित हो जाता है :

> मुझे लगा है शाप, न जब तक
> रात प्रातः बन जाये,
> तब तक द्वार-द्वार मेरी लौ
> दीपक राग सुनाये।
> जब तक खुलती नहीं बाग की
> पलकें फूलों वाली,
> तब तक पात-पात पर मेरी
> किरन सितार बजाये।
> आये जाये सांस कि चाहें रोये गाये पीड़ा,
> मैं जागूँगा जब तक आती धूप न सबके पास है।

अहं का परम में यह विलय उनके हृदय की विशालता और महानता का ही परिचायक है। उनका काव्य एक ऐसा कोष है जहाँ मानवमात्र का प्रत्येक सुख दुःख सहेज कर रखा गया है।

शैव दर्शन में कविता का लक्ष्य 'चिदावर्ण भग' माना गया है। अर्थात् काव्य आत्मा के ऊपर पड़े समस्त आवरणों को हटा देता है, आत्मा को ऊपर उठाता है और शुद्ध बुद्ध चेतन तत्त्व बना देता है। कबीर ने 'घूँघट के पट खोल री' कहकर इसी ओर प्रयास किया था, नीरज का काव्य भी इसी ओर प्रयत्नशील है। वह भी कहते हैं :

हर घर घिरा किवाड़ों से

नीरज का आत्म परिष्कार, आत्मोत्थान का यह प्रयास उनके औदात्य के बहुत निकट ले आता है। यह आत्म परिष्कार मात्र व्यक्ति का नहीं मानव का भी है। उनका लक्ष्य व्यक्ति से होकर विश्व तक पहुँचना ही है। लोंगिनुस ने काव्य के इसी तत्त्व को अनन्त विस्तारण कहकर प्रकट किया था, जहाँ संसार की प्रत्येक वस्तु को हमारी कल्पना अपनी भावनाओं में समेट लेती है। नीरज की 'इस द्वार क्यों न जाऊँ, धरती स्वर्ग समान है, फूल की सारी कहानी धूल से' आदि कविताओं में व्यक्ति के इसी विस्तार के दर्शन होते हैं। इनका कथ्य एक विशिष्ट सीमा का नहीं है, वह सीमाहीन है। सम्भवतः प्रकृति का हर सम्भावित व्यापार इनकी सीमा रेखा के भीतर आ सकता है। जीवन के प्रत्येक व्यापार से एक ही भाव का स्वर गूँज रहा है :

एक दिन देखता हूँ कि रूठी हुई,
चाँदनी चन्द्रमा से बड़ी दूर है।
एक दिन यह सुना फूल की चोट से,
एक पाषण का दिल हुआ चूर है
'रो न हम आयेंगे कल बदलकर कफ़न
एक दिन एक बोला शलभ दीप से,
चूम लूँ मैं तुझे तब मुझे कर दफ़न
पर सुनी अनसुनी बात ऐसी हुई
रूठ सोया शलभ लौ मचलती रही,
इस तरह तय हुआ साँस का यह सफ़र
जिन्दगी थक गई मौत चलती रही।

उदात्त भावों का दूसरा कारण है भावों की असाधारण शक्ति और वेग अर्थात् काव्यगत भावों को असाधारण शक्ति के साथ प्रकट होना चाहिये, एक ज्वालामुखी के विस्फोट के सदृश्य अनेक अतलगर्भ से आये बड़े-बड़े पत्थरों की सम्भावना उसमें रहनी चाहिये। नीरज के काव्यगत भावों में गरिमा बहुत अधिक है और शक्ति और वेग भी उनकी कृतियों में प्रायः सर्वत्र रहा है। उनकी भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है, 'अब युद्ध नहीं होगा, पीड़ा मिली जनम के द्वारे, ओ हर सुबह जगाने वाले, मेरे जीवन का सुख दुःख की दुनिया' में आदि गीतों में शक्ति और उद्दाम वेग साथ-साथ दिखाई देते हैं। अब युद्ध नहीं होगा, हर सुबह जगाने वाले आदि कविताओं में सामाजिक वैषम्य से उत्पन्न भावों का शक्ति और वेग पूर्ण प्रकटीकरण है :

भूख फली थी यूँ गलियों में
ज्यों फूले यौवन कनेर का,
बीच ज़िन्दगी और मौत के
सिर्फ फासला था मुँडेर का,
मजबूरी इस कदर, बहारों
में गाने वाली बुलबुल को
दो दानों के लिए कीर्तन
करना पड़ता था कुबेर का।

और पीड़ा मिली जनम के द्वारे, विदेशी रूप न बंधने वाला है शृंगार में, आदि गीतों में व्यक्तिगत भावों की शक्ति और वेग दर्शनीय है।

लोंगिनुस ने माना है कि काव्य के औदात्य का बहुत बड़ा कारण अलौकिक ऐश्वर्य है अर्थात् 'जहाँ काव्य में वर्णित सभी गुण यह सिद्ध कर देते हैं कि उनको धारण करने वाले मनुष्य ही हैं, वहाँ औदात्य लेखक को ईश्वर (ऐश्वर्य) के समीप ले जाता है।' लोंगिनुस की विचार धारा यहाँ मानववाद के बहुत निकट है। नीरज में मानव की प्रतिष्ठा अत्यन्त उच्च धरातल पर है। वह समाज के सभी रीति-नियमों, विधि-विधानों से ऊँचा पद मानव को देते हैं। संसार के बड़े से बड़े गुण का अधिष्ठाता, बड़ी से बड़ी विजय का श्रेय उसी को है। उन्होंने मानवता की प्रतिष्ठा इस प्रकार की है :

जाति-पाँति से बड़ा धर्म है,
धर्म ध्यान से बड़ा कर्म है,
कर्म-काण्ड से बड़ा मर्म है,
मगर सभी से बड़ा यहाँ यह छोटा-सा इंसान है,
और अगर यह प्यार करे तो धरती स्वर्ग समान है।

'ऐवरेस्ट विजय पर' आदि कविताओं में मानव की विजय का ही जयघोष है, जो काव्य के औदात्य का ही प्रमाण है।

उत्कृष्ट एवं स्थायी प्रभाव क्षमता भी उदात्त का प्रमाण है। उदात्त का प्रभाव अत्यन्त 'प्रबल और दुर्निवार' होता है। लोंगिनुस कहता है : 'बज्रपात का बिना पलक झपकाए सामना करना तो आसान है किन्तु एक के बाद एक तीव्र गति से होने वाले उस भाव विस्फोट को अविचल दृष्टि से देखना सम्भव नहीं—वास्तव में महान रचना नहीं है जिससे प्रभावित होना कठिन ही नहीं लगभग असम्भव हो जाय। और जिसकी स्मृति इतनी प्रबल और गहरी हो कि मिटाये न मिटे।' प्रभाव की इस दुर्निवार प्रबलता का प्रमाण नीरज की अनेक रचनाएं देती हैं जो अत्यन्त लोकप्रिय रही हैं। उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता का कारण वह प्रभाव ही है जो कविता को एक बार सुनने या पढ़ने के बाद श्रोता या पाठक उसे भूल नहीं पाते। उनका कारवां गुजर गया, आज जी भर देख लो तुम चाँद को, एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के, जिंदगी थक गई मौत चलती रही आदि अनेक रचनाएँ हिन्दी की आधुनिक कविता की अमूल्य स्मृतियाँ हैं और रहेंगी। उनसे प्रभावित या अभिभूत नहीं हो पाना ही कठिन है। उनकी लोकप्रियता उनकी उदात्तता की ही परिचायक है।

उदात्त की अनुभूति के आन्तरिक तत्वों में लोंगिनुस मन की उर्जा, उल्लास, संभ्रम अर्थात आदर और विस्मय एवं अभिभूत अर्थात् सम्पूर्ण चेतना के अभिभूत हो जाने की अनुभूति की गणना करते हैं। लोंगिनुस का कथन है : 'मैं यह बात पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि जो आवेग उन्मद उत्साह के उद्दाम वेग से फूट पड़ता है और एक प्रकार से वक्ता के शब्दों को विक्षेप से पूर्ण कर देता है, उसके यथास्थान व्यक्त होने से स्वर में जैसा औदात्य आता है, वह अन्यत्र

दुर्लभ है।' उसने आवेग के सभी रूपों को उदात्त नहीं माना, केवल प्रेरणा प्रसूत भव्य आवेग को ही उदात्त स्वीकार किया 'जिनसे हमारी आत्मा जैसे अपने आप ही ऊपर उठकर गर्व से उच्चाकाश में विचरण करने लगती है तथा हर्ष और उल्लास से परिपूर्ण हो उठती है।' उल्लास और हर्ष की प्रतिध्वनि नीरज की बहुत कम कविताओं में मिलती है। गंगा की कसम-जमुना की कसम, ऐवरेस्ट विजय पर आदि कुछ ही कविताओं में उल्लास की छाया है। अन्यथा उनकी सभी कविताओं में करुणा और चिंतन का प्राधान्य है। इसका कारण यह नहीं है कि लोंगिनुस के उदात्त से उनका कोई विरोध है। वस्तुतः लोंगिनुस सामंती वर्ग का व्यक्ति था। उसका चिंतन भी सामन्ती है इसलिए उसे करुणा से अधिक हर्षोल्लास ही आकर्षित कर सका है। इसी से उसने शोक को उदात्त का विरोधी मान लिया है जबकि करुणा से अधिक उदात्त तत्व संसार में दूसरा नहीं है। भवभूत ने इसीलिए करुणा को एक मात्र रस मान लिया था "एको रस करुणेव:"। बुद्ध भी दुःख को प्रधान मान कर चले थे। यूँ भी सुख बँटाना कोई नहीं चाहता दुःख ही मानव-हृदय को विशाल बनाता है। नीरज बुद्ध की करुणा से प्रभावित होने के कारण हर्षोल्लास से दूर हैं और इसके विपरीत उदात्तीकरण और आत्म-परिष्कार का माध्यम दुःख और करुणा को ही मानते हैं। वही हृदय को विशाल कर कलुष को धोकर उज्जवल करता है। वह कहते हैं :

> मैंने तो चाहा बहुत कि अपने घर में रहूँ अकेला,
> सुख ने दरवाजा बन्द किया दुःख ने दरवाजा खोल दिया।

साथ ही आज की सामाजिक तथा अन्य समस्याएँ इतनी विकट और भीषण हैं कि वहाँ उल्लास को खोज पाना ही असम्भव है आज के संघर्ष शील युग में उल्लास व हर्ष के गीत गाना युग की ओर से आँखें मूँद कर एकांत कीर्तन भजन करने के समान है। इसलिए कवि के निकट मानवता और विश्वबंधुत्व ही हृदय की विशालता और उदात्तता का लक्ष्य बन गये हैं। लोंगिनुस के संभ्रम अर्थात आदर और अभिभूति से भी नीरज का विरोध है। लोंगिनुस का विचार है कि 'जो कुछ भी उपयोगी तथा आवश्यक है, उसे मनुष्य साधारण मानता है, अपने संभ्रम का भाव तो वह उन पदार्थों के लिए ही सुरक्षित रखता है जो विस्मय विमूढ़ कर देने वाले हैं। वे काव्य की गरिमा इस आदर

ग्रौर विस्मय को जन्म देती है। जहां तक काव्यगत गरिमा का विचार है नीरज का काव्य गम्भीर ग्रौर गरिमामय होने के कारण लोंगिनुस की कसौटी पर खरा उतर सकता है। पर संभ्रम एवं ग्रभिभूति ग्रर्थात विस्मय विमूढ़ कर देने के पक्ष में वह नहीं हैं। यथार्थ के ग्रधिक निकट होने के कारण उनमें ऐसा चमत्कारिक ग्रादर्शवाद बहुत कम ग्रा पाया है जिसके प्रति मात्र ग्रादर ग्रौर संभ्रम उत्पन्न हो सके। वह इस उपयोगितावाद के पक्ष में नहीं है। ऐसी ग्रादर्शात्मकता उनके काव्य में बहुत कम है ग्रौर संभ्रम ग्रौर विस्मय विमूढ़ता तो बिल्कुल ही नहीं है। युग के विघटन का प्रतिनिधित्व करने के कारण उनकी कविताएँ ऐसे ग्रादर्शलोक की सृजना ही नहीं कर पाती जहां ग्रादर ग्रौर संभ्रम का वातावरण उत्पन्न हो सके। कुछ ही गीतों में इसकी धुंधली सी छाया देखी जा सकती है जैसे 'हिन्दोस्तान बदल कर छोड़ूंगा', 'नीरज' गा रहा है' —ग्रादि में—

जो झुका हो वह उठे ग्रब सर उठाये
जो रुका है वह चले नभ चूम ग्राये,
जो लुटा है वह नये सपने सजाये,
जुल्म शोषण को खुली देकर चुनौती,
प्यार ग्रब तलवार को बहला रहा है।

× × × ×

शांति का झण्डा लिए कर में हिमालय
रास्ता संसार को दिखला रहा है।

परंतु संभ्रम ग्रौर विस्मय विमूढ़ता का कहीं दर्शन नहीं होता ग्रौर इसका कारण भी युग की सापेक्षिता में ही है।

उदात्त शैली के तत्वों की ग्रोर भी लोंगिनुस ने संकेत किया है। इस बहिरंग तत्वों में प्रथम है समुचित ग्रलंकार योजना। लोंगिनुस ने यहां उदात्त के साथ-साथ सबसे ग्रधिक बल दिया है ग्रौचित्य पूर्ण ग्रलंकार विन्यास पर। ग्रलंकार ग्रौदात्य का पोषक तभी हो सकता है जब वह रीति, स्थान, परिस्थिति ग्रौर उद्देश्य की रक्षा करता हो। ग्रर्थात् उत्कृष्ट भावव्यंजना में पूर्णतः समर्थ हो। नीरज के ग्रलंकार सदैव ग्रौचित्यपूर्ण हैं न कहीं उनका सूनापन या ग्रभाव

है। और न कहीं आंखों को चूमने वाली चमक दमक। उनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अलंकार होते हुए भी अलंकार नहीं, काव्य का प्राण ही प्रतीत होते हैं। वे सदैव अचलज हैं, औचित्यपूर्ण हैं और भावरक्षा में समर्थ हैं। यथा, रूपक आदि सभी इतने सहज रूप में आये हैं कि वह काव्य का कथ्य ही बन गये हों। जैसे :—

बिन धागे की सुई जिन्दगी,
सिये न कुछ बस चुभ-चुभ जाये,
कटी पतंग समान सृष्टि यह,
ललचाये पर हाथ न आये।

अथवा

काल के अहंत अधरों पर धरी,
जिन्दगी यह बांसुरी है, चाम की,
क्या पता कल श्वास के स्वर कार को,
साज़ यह आवाज़ यह, आये न आये,
आज जी भर देख लो तुम चांद को,
क्या पता यह रात फिर आये न आये।

लोंगिनुस ने औदात्य का पोषण करने वाले अलंकारों की गणना भी की है, विस्तारणा, सम्बोधन, प्रश्नालंकार, विपर्यय, व्यतिक्रम, पुनरावृत्ति, छिन्न-वाक्य, प्रत्यक्षीकरण, संचयन, सार, रूपपरिवर्तन, पर्यायोक्ति आदि को वह उदात्त का पोषक मानता है। इसमें विस्तारणा, सम्बोधन, व्यतिक्रम, संचयन आदि अनेक अलंकार किसी न किसी रूप में नीरज के काव्य में भी मिल जाते हैं। पर आधुनिक युग में अलंकार सम्बन्धी मान्यताओं के परिवर्तित हो जाने से उदात्त के पोषक इन अलंकारों को ज्यों का त्यों ग्रहण करना न सम्भव है और न श्रेयस्कर। नीरज के काव्य के अलंकार युग की बदलती हुई साहित्यिक मान्यताओं को स्वीकार करते हुए उदात्त का पोषण भी करते हैं। उन्होंने युग सापेक्षिता और औदात्य का दोनों को औचित्य के संदर्भ में स्वीकार किया है। औचित्य जो औदात्य की सबसे बड़ी स्वीकृति है।

उदात्त की बहिरंग पक्ष में लोंगिनुस ने उत्कृष्ट भाषा की गणना भी की है। उसने विचार और पद विन्यास को एक दूसरे का पूरक माना है अतः स्वभावतः ही उदात्त भाव की अभिव्यक्ति का माध्यम उत्कृष्ट और गरिमामयी भाषा ही हो सकती है। भाषा में प्रमुख स्थान शब्द सौन्दर्य का है। अर्थात् उपयुक्त एवं औचित्यपूर्ण शब्द प्रयोग ही काव्य को गरिमा देते हैं। भाषा की उत्कृष्टता में उसकी दृष्टि औचित्य पर विशेष रही है उसने कहा है किन्तु गरिमामयी भाषा का उपयोग सर्वत्र नहीं करना चाहिये क्योंकि छोटी-मोटी बातों को बड़ी-बड़ी और भारी भरकम संज्ञा देना किसी छोटे से बालक के मुख पर पूरे आकार वाला त्रासद अभिनय का मुखौटा लगा देने के समान है। अर्थात् प्रसंगानुकूल शब्द प्रयोग पर ही वह विशेष दृष्टि रखता है। नीरज की भाषा में भाव व विषय के अनुकूल शब्द क्षमता की बड़ी सामर्थ्य है। जहाँ जैसा प्रसंग है उसी के अनुरूप भाषा ढल गई है। आदि पुरुष और अरविंद की अनुवादित कविताओं में विषयानुरूप भाषा भी ओजपूर्ण एवं समास प्रधान है। दिव्य सुमन का अनुवाद इस प्रकार है :

नभ नीलम पर कुंकुम की शुभ रेखा सम अंकित दिव्य सुमन,
आनन्दोत्पल ! आग्नेय मधुर ! चेतन-सत्-सत्त रंजन ।
वर्णनातीत के प्रेम पुष्प, हे चिर रहस्यमय मधु कलि के,
मानव मानस में धधक उठो, हे चमत्कार, हे ज्योति शिखे ।

और जीवन के सहज रूप में वह अत्यन्त प्रवाह पूर्ण और व्यंजक बन जाती है। नीरज की भाषा की विशेषता उसका सहज प्रवाह और व्यंजकता ही है। साधारण से साधारण शब्दों को भी उन्होंने संस्कार कर भावव्यंजना के अनुरूप कर लिया है और उनके द्वारा गूढ़ दर्शन देने का प्रयत्न भी किया है। नीरज का शब्द विधान अत्यन्त संगत है वहाँ एक भी शब्द परिवर्तित नहीं हो सकता। 'कारवाँ गुजर गया' के स्थान पर 'कारवाँ निकल गया' नहीं हो सकता। शब्दों की ध्वनि (tone) को समझने की जितनी सामर्थ्य नीरज में है सम्भवतः आधुनिक पीढ़ी के किसी और कवि में नहीं है। लोंगिनुस ने भाषा की भव्यता को भी औदात्य के लिए आवश्यक बताया है। वह वरिष्ट था क्लासिकल भाषा

का समर्थक है क्योंकि वह सामन्ती सभ्यता का निर्माण था पर नीरज वर्ग नहीं सम्पूर्ण समाज के देश के कवि हैं। उनकी भाषा भी वर्ग विशेष की नही है। वह अत्यन्त साधारण है और महान् से महान् कथ्यों की अभिव्यक्ति की क्षमता रखती है। यथा :—

हम पत्ते तूफान के

हम किसको क्या दें—लें,

हमतो बंजारे वीरान के,

ऊपर उठते नीचे गिरते

आंधी संग भटकते फिरते

जिस पर लंगर नहीं, मुसाफिर

हम ऐसे जलयान के।

उत्कृष्ट भाषा के साथ-साथ गरिमामय एवं उर्जित रचना विधान भी उदात्त शैली का एक प्रमुख अंग है। रचना विधान के अन्तर्गत 'शब्दों, विचारों, कार्यों, सुन्दरता तथा राग के अनेक रूपों का सुगुम्फन रहता है। यहाँ भी सामंजस्य, संतुलन अथवा औचित्य ही शैली का प्रधान तत्व प्रतीत होता है' नीरज के काव्य में यह औचित्य सर्वत्र ही विद्यमान हैं। भाषा, भाव एवं छन्द सदैव एक दूसरे में इतने लय हैं कि उनको भिन्न करना सम्भव नहीं। जैसे इस गीत में :—

तुझसे लगन लगाई,

उमर भर नींद न आई।

सांस-सांस बन गई सुमिरनी,

मृगछाला सबकी सब धरणी,

क्या गंगा, कैसी वैतरणी,

भेद न कुछ कर पाई,

दहाई बनी इकाई।

यह औचित्यपूर्ण रचना विधान ही उनके काव्य की गरिमा एवं प्रसिद्धि का प्रमुख कारण है।

लोंगिनुस ने कल्पना को भी उदात्त शैली का प्रमुख अंग माना है। उसने बिम्बों को गरिमा, उर्जा और शक्ति के सम्पादन में सहायक माना। चित्रात्मकता द्वारा मानस साक्षात्कार करा देने के कारण बिम्बों का उदात्त शैली में महत्वपूर्ण योग है। नीरज के बिम्ब एवं प्रतीकों की योजना सदैव उत्कृष्ट है। उनकी कल्पना उनके भावों का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। उनके सभी भाव बिम्बो एवं प्रतीकों में अभिव्यक्त हुए हैं। जीवन की पीड़ा और अभावों को प्रतीकों द्वारा इस प्रकार रूपायित किये गये हैं।

गीले ये सब रूमाल, अश्रु की
पनिहारिन हर एक नज़र थी
शबनम की बूँदों तक पर
निर्दयी धूप की कड़ी नज़र थी,

निरवंशी ये स्वप्न, दर्द से
मुक्त न था कोई भी आंचल
कुछ के चोट लगी भीतर थी
कुछ के चोट लगी बाहर थी।

नीरज की कल्पना के निर्माण बिम्ब और प्रतीकों की उत्कृष्टता एवं औचित्य का अध्ययन हम पहले ही कर चुके हैं। यहां अधिक व्याख्या अनावश्यक ही होगी।

समष्टि में औदात्य के सभी अंगों का समुचित प्रयोग हमें नीरज की कविता में मिल जाता है। यद्यपि उनका औदात्य ठीक लोंगिनुस का औदात्य नहीं है, क्योंकि अनेक नवीन तत्वों को उन्हें युग की सापेक्षिता में समाज, साहित्य और जीवन की परिवर्तित मान्यताओं एवं परिस्थितियों के अनुरोध से स्वीकार करना पड़ा है तथापि वे उदात्त के अत्यन्त निकट हैं। लोंगिनुस ने भी औदात्य का मूल औचित्य को माना था और युग के संदर्भ में औचित्यपूर्ण होने के कारण नीरज के समस्त काव्य को हम उदात्त का ही स्वरूप कह सकते हैं।

नीरज की भाषा

भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा काव्य का एक अत्यधिक महत्वपूर्ण तत्व है। काव्य में भाषा का वही स्थान है जो सगुण भक्ति में राम-कृष्ण की मूर्ति या तस्वीर का होता है या जो चित्र में रेखाओं का होता है। उसी के माध्यम से कवि का अरूप, सरूप होता है, उसका अन्तर बाह्य बन जाता है और उसका व्यक्ति समष्टि से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यह भाषा तत्व ही है जो कविता को कविता की संज्ञा देता है अन्यथा भावों की एक अपार राशि सभी हृदयों में सामान्यरूप से विद्यमान रहती है। कविता में यह भाषा ही है जिसे पढ़ा जाता है, समझा जाता है और जिसका विचार विश्लेषण किया जाता है। भाव इन सभी भौतिकताओं से परे हैं। वह तो केवल गूंगे का गुड़ है पर कविता कवि के भावों की शब्दमयी अभिव्यक्ति है।

अभिव्यक्ति के माध्यम भाषा के सम्बन्ध में नीरज के निश्चित विचार हैं और उन्हीं विचारों का प्रयोग है उनकी कविता की भाषा। कविता और गद्य की भाषा में अन्तर होता है। नीरज इस अन्तर को स्वीकार करते हैं वे कहते हैं जब लिखने के लिए लिखा जाता है तब जो कुछ लिखा जाता है उसका नाम-गद्य पर जब लिखे बिना रहा न जाय और जो खुद लिख-लिख जाय उसका नाम है कविता। मेरे जीवन में कविता लिखी नहीं गई, खुद लिख-लिख' गई, ऐसे ही जैसे पहाड़ों पर निर्झर और फूलों पर ओस की कहानी लिख जाती है। जिस प्रकार 'जल-जल कर बुझ जाना' दीपक के जीवन की विवशता है उसी प्रकार 'गाकर चुप हो जाना' मेरे जीवन की मजबूरी है यानी वह मेरे अस्तित्व की शर्त है, अनिवार्यता है और इसीलिए मैं उसे नहीं, वह मुझे बांधे हुए हैं।' (दृष्टिकोण-दर्द दिया है)। इस तरह नीरज बुद्धि बल से लिखी गई तुकांत या अतुकांत रचना को कविता मानने को तैयार नहीं है। कविता का सबसे बड़ा गुण है सहजता, जो बरबस 'लिख-लिख' जाये, जो काव्य में कवि का बुद्धि-

विलास बनकर न आये वरन् कवि की विवशता बन कर आये। भाषा की सहज स्वाभाविकता एवं गतिमयता ही कविता की अधिकारिणी है। नीरज भी मानते हैं—

कविता की सबसे बड़ी शक्ति उसकी गति और स्वाभाविकता ही है। जब हम स्वाभाविकता से अस्वाभाविकता की ओर जाते हैं तब गद्य रचना करते हैं पर जब अस्वाभाविकता से स्वाभाविकता की ओर आते हैं तब कविता लिखते हैं।

नीरज के गीतों में यह स्वाभाविकता, सहजता एवं गति सर्वत्र ही प्राप्य है उनकी कोई भी कविता इसका उदाहरण बन सकती है। यथा :

आज गगन में सावन बनकर
घिर-घिर आई याद तुम्हारी।

जरा पुरा था घाव कि छूकर,
हरा कर गई फिर पुरवाई।
आपका ही था दर्द कि सहसा
बादल ने आवाज लगाई।

तनिक चुपा था हिया कि आकर
निठुर पपीहा पिया कह उठा,
कुछ सूनी थी सेज कि नभ ने
बूँदों की बाँसुरी बजाई।.........

परन्तु कविता की सहज स्वाभाविकता से आगे गीत एक ऐसे क्षण की सृष्टि है जहाँ स्वर प्रधान हो जाता है। आज हर छंदबद्ध रचना को गीत कह देने का प्रचलन-सा हो गया है पर गीत और कविता अर्थात् छन्दबद्ध या छंदमुक्त रचना में पर्याप्त अन्तर है। गीत का आन्तरिक संगठन स्वर, शब्द संयोजन और स्वर मैत्री पर आधारित है जबकि कविता में उसकी इतनी आवश्यकता नहीं है। इस विषय में नीरज अपना मत स्पष्ट करते हुए कहते हैं।

कविता के आन्तरिक संगठन के विषय में मेरा मत है कि यद्यपि श्रेष्ठ कविता में हृदय और बुद्धि का संतुलन होता है और तथापि उनकी क्रियाऐं विपरीत होती हैं। बुद्धि का कार्य सोचना है और हृदय का व्यापार अनुभूति प्राप्त करना है। कविता में दोनों क्रियायें बदल जाती हैं हृदय सोचने लगता है और बुद्धि अनुभव करने लगती है इसको इस तरह भी कह सकते हैं कविता में बुद्धि सोचती तो है लेकिन हृदय के माध्यम से ही सोचती है। × × × × गीत की रचना में हमें कविता से एक कदम और आगे बढ़ना पड़ता है। उसकी सृष्टि में बुद्धि पूर्णतया हृदय की शरण में जाकर सोचने का कार्य कंठ को सौंप देती है। ऐसा इसलिए होता है कि गीत का प्राण केवल एक अमूर्त्त भाव होता है जो स्वर संकेत से व्यक्त होता है। जब तक रचना का आधार मूर्त्त होता है तभी तक बुद्धि साथ देती है किन्तु जैसे ही विषय अमूर्त्त हुआ बुद्धि निःसम्बल होकर हृदय के पास जाकर समर्पण कर देती है। कविता मे हम हृदय से सोचते हैं और बुद्धि (विवेक) से अनुभूति प्राप्त करते हैं। किन्तु गीत में हृदय कण्ठ के द्वारा सोचने लगता है।

इस तरह नीरज गीतों में गेयता का तत्व प्रमुख मानते हैं पर गेयता के साथ-साथ शब्द संयोजन और शब्द मैत्री पर भी वे विशेष बल देते हैं। शब्दों की ध्वनियां और उनके संदर्भ और समानान्तर में आने वाले शब्दों के औचित्य को वह महत्वपूर्ण मानते हैं। उनकी मान्यता है कि हर शब्द का एक पूरक शब्द होता है जैसे दिन का रात, सुबह का शाम और इन्हीं पूरक शब्दों के संदर्भ में वे शब्द अपनी पूर्ण व्यंजना कर सकते हैं जैसे:—

मैं ज्वाला का ज्योति काव्य,
चिनगारी जिसकी भाषा,
किसी निठुर की एक फूंक का,
हूं बस खेल-तमाशा।
पग तल लेटी निशा, भाल पर
बैठी ऊषा गोरी,
एक जलन से बांध रखी है

साँझ सुबह की डोरी।
सोये चांद-सितारे, भू-नभ, दिशि-दिशि स्वप्न मगन है।
पी पीकर निज आग जग रही केवल मेरी प्यास है।
जल-जल कर बुझ जाऊं, मेरा बस इतना इतिहास है।

यहाँ निशा-उषा, सांझ-सुबह, चांद-सितारे, भू-नभ आदि एक दूसरे के पूरक शब्द हैं इनके साथ २ प्रयोग होने से प्रभाव में अत्यधिक मार्मिकता आ जाती है। इन्हीं शब्दों की तरह गीत का हर पद भी एक दूसरे का पूरक बनकर आता है। इससे प्रवाह के कारण सगीतात्मकता का जन्म होता है उनकी अनेक कविताओं में इस पदमैत्री और स्वर संगठन के औचित्य को देखा जा सकता है। यथा—

अनजान यह नगर है, अनजान यह डगर है।
न पड़ाव का पता है, न ठहराव की खबर है।
सब कह रहे मुसाफिर चलना सम्हल-सम्हल कर
लम्बा बहुत सफर है छोटी बहुत उमर है।

यह प्रवाह और संगीत उनकी कैसी लगन लगाई, दरस तुम्हारा प्राण बन गया, मैं पीड़ा का राजकुँवर हूँ, ओ हर सुबह जगाने वाले आदि अनेकानेक गीतों में भी प्राप्त होता है। नीरज के गीतों की लोकप्रियता का बहुत बड़ा कारण यह शब्दों और भावों का सुन्दर सामंजस्य ही है। जहाँ शब्द, भाव और स्वर इस प्रकार एक हो जाते हैं कि उनका पार्थक्य असम्भव होता है।

नीरज की भाषा के प्रति उर्दूपन की शिकायत भी बहुत हुई है लोगों ने उनके गीतों को उर्दू के गीत तक कह दिया है, पर यह आरोप पूर्णतः उचित नहीं है। यद्यपि उनमें उर्दू के शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है पर कोई भी शब्द ऐसा नहीं है जो प्रचलित न हो और जिसके लिए हमें उर्दू की डिक्शनरी उठा कर देखनी पड़े। वस्तुतः उर्दू के बहुत से शब्द हमारे जीवन में हिन्दी की रक्त मांस-मज्जा में मिल गये हैं, हिन्दी की प्रवृत्ति में घुलकर हिन्दी के ही बन गये हैं, इनको अलग नहीं किया जा सकता। नीरज ने प्रायः इन्हीं अपने हो

जाने वाले शब्दों का प्रयोग किया है और इस कला के साथ किया है कि वह उर्दू के होते हुए भी हिन्दी के ही प्रतीत होते हैं इसके अपवाद शायद ही कोई प्रयोग हों। आज का सामान्य समाज जिस भाषा को बोलता है, जिस भाषा को समझता है नीरज की विशेषता है कि वह ठीक उसी भाषा में भावाभिव्यक्त कर सकते हैं। कवि बनते समय हिन्दी की कट्टरता का लबादा ओढ़ना न जरूरी है और न श्रेयस्कर ही। उनके शब्दों में शायद यह उर्दू की नजाकत, उर्दू की संगति (accuracy) है जो जनजन के कण्ठ में आप से आप बस जाती है।

नीरज को भाषा उनके काव्य के सबसे बड़े कथ्य मानव प्रेम की प्रतिरूप है। जिस प्रकार उनका मानव प्रेम व्यक्ति देश और समाज की सीमाओं से परे एक ऐसा सत्य है जिसे हर व्यक्ति देश या समाज स्वीकार कर सकता है उसी प्रकार उनकी भाषा भी किसी भी प्रकार के भाषागत पिंजरों से मुक्त ऐसी स्वच्छन्द विहारिणी विहगी है जो हर उपवन, हर कानन में बैठकर गा सकती है और जो हर फूलपत्ती को अपने आकर्षण सूत्र में बांध सकती है। इसीलिए उनकी भाषा न हिन्दी है न उर्दू, वह तो मानव प्रेम की अत्यन्त सहज अभिव्यक्ति है। वह तो कवि को किसी 'पिया की कसम' लगी है जो उसे गाने को विवश कर देती है। नीरज कहते हैं—

हिन्दी नहीं यह उर्दू नहीं यह
है यह पिया की क़सम
इसकी सियाही आंखों का पानी
दर्द की इसकी क़लम।

उनकी भाषा भी उनके दर्द की तरह अनाम, अछूती और अभूतपूर्व है पर वह एक ऐसी भाषा है जिसे हृदय की स्वीकृति मिली हुई है, जो हर संकीर्णता की विरोधी है जो नितान्त सहज है और इसीलिए भाषा भेद के द्वारा बने असहज दायरों में जिसे बन्द नहीं किया जा सकता। दर्द दिया है की भूमिका में नीरज ने कहा भी है—मेरी भाषा के प्रति लोगों

की शिकायत रही है कि न तो वह हिन्दी है और न उर्दू। उनकी यह शिकायत सही है और इसका कारण यह है कि मेरे काव्य का विषय जो मानव प्रेम है उसकी भाषा भी इन दोनों में से कोई नहीं है। हृदय में प्रेम सहज ही अंकुरित होता है और जीवन में वह सहज ही हमें प्राप्त होता है। जो सहज है उसके लिए सहज भाषा ही अपेक्षित है, असहज भाषा में यदि वह कहा जायगा तो अनकहा ही रह जायगा। इसलिए मानव प्रेम के गायक होने के नाते नीरज की भाषा भी मानवमात्र की भाषा है, किसी वर्ग जाति या गुट विशेष की नहीं। उनके ऊपर उर्दूपन का आरोप कुछ ही रचनाओं के कारण लगाया जा सकता है। यद्यपि आसावरी, बादर बरस गयो आदि की कुछेक रचनाओं में कवि उर्दू से प्रभावित अवश्य लगता है परन्तु उनकी इधर की रचनाओं में जो लोकप्रिय कवि नीरज, गीत भी अगीत भी आदि में संग्रहीत है, उर्दू का तनिक भी प्रभाव, तनिक भी मोह कवि को नहीं है। शैली संस्कृत निष्ठ नहीं है और वह कट्टरवादिता में नहीं गिनी जा सकती, पर वह अत्यंत सहज सुबोध है और नागरिक भाषा के अत्यन्त निकट है सब कुछ मिलाकर उनकी भाषा ठीक वही है जिसे आज का हर व्यक्ति समझता सुनता और बोलता है।

नीरज कविता को शब्दों से ऊपर की वस्तु मानते है :

जहाँ नहीं सामर्थ्य शब्द की
वहाँ गीत का हुआ जन्म है।

यानी गीत की ध्वनि, संकेत अथवा कथ्य ही उसका प्राण है भाषा तो मात्र उसकी त्वचा है जिसमें बँध कर वह अरूप रूपायित होता है। इसलिए भाषा की घनता या बोझिलता को भी वह स्वीकार नहीं करते। शब्द भाव के ऊपर का छिलका है। जितना आवरण झीना होगा उतना ही भाव देदीप्यमान होगा। इसीसे से उनकी भाषा अंगूर के छिलके के सदृश्य भाव को अवगुण्ठित किए रहती है जहाँ से उसकी रसमयता सदैव ही झलक-झलक पड़ती है, वह अखरोट के छिलके के समान नहीं है जिसके कड़ेपन में यह भी पता नहीं लगता

कि गिरी सूखी है, सड़ी है या है भी या नहीं। इस तरह उनकी भाषा अत्यन्त सहज है। शब्दों की मितव्यता पर भी नीरज की दृष्टि है वह कमसे कम केवल उतने ही शब्द भावाभिव्यक्ति के लिए चुनते हैं जितने के बिना अभिव्यक्ति असम्भव हो जाती है। इस तरह उनकी भाषा में संक्षिप्तता, कसावट और एकदम सही शब्दों के प्रयोग का गुण स्वतः ही आ जाता है। उनके निम्न गीत में इसे भली भांति देखा जा सकता है—

साधो हम चौसर की गोटी,
कोई गोरी, कोई काली, कोई बड़ी, कोई छोटी।

यहां एक भी शब्द को हटाया नहीं जा सकता, बदला नहीं जा सकता और न कोई नया शब्द लाया जा सकता। यहां का एक भी शब्द निरर्थक भी नहीं है। भाव की अभिव्यक्ति के यह कम से कम, एकदम पारदर्शी माध्यम है, जहां से भाव स्पष्ट प्रकाशित होता रहता है।

नीरज की भाषा की एक अन्य विशेषता है उसका औचित्य। अर्थात् जहां जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग होना चाहिए नीरज वहां सदैव विषय और संदर्भ के अनुकूल ठीक वैसी ही भाषा का प्रयोग करते हैं। उनके मत से गीत आधीरात के उस अयाचित मेहमान की तरह है जो अनजाने ही द्वार पर आकर थपकी देता है। कवि का पहला काम है उसे पहचानना, उससे परिचित होना कि वह हाट से आया है या घाट से, पनघट से या मरघट से, अथवा नदी प्रान्तर से आया है या वन प्रान्तर से। और फिर यदि वह नदी तट का मेहमान है तो उसकी बालू की सेज तैयार करनी होगी, गंगाजल से पांव धुलाने होंगे, वन प्रान्तर से आया है तो उसे फूलों के गजरे पहनाने होंगे और यदि मरघट से आया है तो उसकी चिता ही सजानी होगी यानी कि ठीक उसका उसी रूप में स्वागत करना होगा। नीरज की इस क्षण के मेहमान को पहचानने और उसको उसी रूप से स्वागत सत्कार देने की यह चेतना बड़ी प्रबुद्ध है। इसलिए उनके गीतों में भावानुरूप सदैव नई प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है। उनके प्रेमगीतों की भाषा उनकी भक्तिपरक या प्रगतिवादी रचनाओं से भिन्न

है। उनके प्रेमगीतों में दो प्रकार की भाषा का प्रयोग है। जो गीत लोक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं उनमें उसी प्रकार लोकभाषा का प्रयोग है जिनसे वातावरण और संस्कृति उभर कर आये हैं। यथा—

नदिया पै बोले पपीहा,
ओ मैया!
सोना न मांगे वह
चाँदी न मांगे वह
मांगे वो मेरा हिया, ओ मैया
नदिया पै बोले पपीहा।

और अन्य प्रेम गीतों में नागरिक सभ्यता के अनुरूप सुसंस्कृत और नागरिक भाषा का प्रयोग है। उदाहरण के लिए—

सेज पर साधें बिछालो
आंख में सपने सजालो

प्यार का मौसम शुभे हर रोज ही आता नहीं है। × × ×
है अमर वह क्षण कि जिस क्षण
ध्यान सब तज कर भुवन का,
मन सुने संवाद तन का
तन करे अनुवाद मन का।
चाँदनी का फाग खेलो
गोद में सब आग ले लो,
रोज ही मेहमान घर का द्वार खटकाता नहीं है।

दार्शनिक गीतों की भाषा गद्यात्मक है। उनमें विचारों की गहनता है इस लिए संकेत भाषा का प्रमुख तत्व बन गया है। इसीसे वहां बिम्बों का प्रयोग नहीं, प्रतीकों का प्रयोग ही प्रमुख हुआ है अथवा वे पूर्णतः रूपकात्मक (allesori

cal) हैं। आज जी भर देख लो तुम चांद को, एक तेरे बिना प्राण ओ प्राण के, दास तुम्हारा प्राण बन गया, माखन चोरी कर तूने और 'मां' को संबोधन कर लिखे गये गीतों आदि की भाषा प्रतीकात्मक है और दर्शन की गहनता व गूढ़ता का प्रतिनिधित्व करती है। इसी प्रकार भक्ति परक गीतों की भाषा भी भिन्न है। उसमें कोमलता और सहज समर्पण की ध्वनि उसकी छोटी-छोटी ह्रस्व ध्वनियों में मूर्तिमान हुई है। यथा इस गीत में—

कैसी लगन लगाई,
उमर भर नींद न आई।

संत शैली में लिखे गये गीतों में संतों की फक्कड़ भाषा के अनुरूप ही भाषा प्रयोग है उनमें अत्यन्त सहज ग्रामीण शब्दों में व्यंजना कराई गई है। यथा—

जब तक खुला हुआ है बस्ता
सबसे जोड़ प्यार का रिश्ता,
कुछ भी साथ न जाये रे, जब हंसा उड़ा अकेला
साधो दुनियां दरसन मेला।

यहां 'हंसा' प्रतीक सहज ही हमें मध्यकालीन परम्परा का स्मरण करा देता है। इनकी भाषा सहज और नीरस है। कमनीयता पर कवि दृष्टि बिलकुल भी नहीं है। इसी प्रकार प्रगतिवादी गीतों में भाषा अत्यन्त सामाजिक है। वहां भाषा ओज प्रधान है और सामाजिक ऊंचाई नीचाई के प्रतिबिम्ब रूप में खुरदुरापन भी खूब प्रकट हुआ है। उनकी भाषा में बाजारों, रास्तों, चौराहों, गलियारों, महलों, मकानों सभी के शब्दों का बेझिझक प्रयोग है। यह कवि के प्रगतिशील मानववादी विचारों का मूर्तरूप है। मैं सोच रहा हूं अगर तीसरा युद्ध हुआ, भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है आदि कविताओं में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग है। उनकी अत्यन्त गम्भीर रचनाओं में संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रयोग भी है। आदि पुरुष और महर्षि अरविंद की अनूदित की हुई रचनाओं में भावानुरूप संस्कृत के समास प्रधान शब्द लाये गये हैं। यथा—

ध्वनि-वसना, स्वर-वर्णा, लय वर्णा, गति चरणा,
जो शून्य समाधि लगाये बैठी यो वाणी ।
कवि-कविता, काव्य-छंद-गीतों में गूंज उठी
जिस बिन मुझसे बोला मेरे दृग का पानी ।

नीरज ने भाषा के चेतना के पांच स्तरों के अनुरूप पांच रूप स्वीकार किये हैं । वे कहते हैं—चेतना के पंच स्तरों के साथ ही भाषा के भी चिन्ह, संकेत, भाव, सूत्र और मंत्र पांच स्तर होते हैं—चिन्ह (आकर्षण), संकेत (प्रेम), भाव (भक्ति), सूत्र (अंश रूप) मन्त्र आनन्द ।' उनकी कविताओं में इन्हीं चेतना स्तरों की भिन्नता से भाषा वैभिन्य आ गया है । कहीं वह चित्रमयी है, कहीं संकेतमयी, कभी भावप्रधान तो कभी संगीत प्रधान । भाषा का भावानुकूल परिवर्तन उनमें सर्वत्र ही है ।

नीरज की भाषा में मुहावरों का सफल प्रयोग भी हुआ है । प्रायः उन्होंने प्रचलित मुहावरों को ही बिना बदले हुए अपना लिया है कतिपय नये मुहावरे भी निर्मित किये हैं वहां संक्षिप्तता और स्तर मैत्री ही उनका आधार रहा है । नीरज में मुहावरों का प्रयोग कम है पर जहां है बहुत ही उचित है यथा—

इस गांव एक काशी,
उस गांव एक काबा,
इसका इधर बुलावा,
उसका उधर बुलावा
इससे भी प्यार मुझको,
उससे भी प्यार मुझको
किसको गले लगाऊं,
किसको करूं बिलावा ।
पर जात क्यों बनाऊं,
दीवार क्यों उठाऊं

हर घाट जल पिया है
गागर बदल-बदल कर ।

यहां 'हर घाट जल पीना' मुहावरे का नवीन अर्थों में प्रतीकवत प्रयोग किया गया है इससे उसमें भाव व्यंजना की अपूर्व सामर्थ्य आ गई है ।

नीरज की सबसे बड़ी विशेषता उसकी भाषा की गति, प्रवाह, सहजता, औचित्य और (appeal) करने की सामर्थ्य है ही । शब्दों की ध्वनि (tone) को पहचानने की क्षमता और भाषा गत समृद्धि जितनी नीरज में है हिन्दी की वर्तमान पीढ़ी के शायद ही और किसी कवि में होगी । अपनी अभिव्यक्ति यानी भाषापक्ष में नीरज सबसे निराले, सबसे बेजोड़ हैं ।

कुछ चुनी हुई विशिष्ट पुस्तकें

प्रत्येक पुस्तक मजबूत जिल्दबंदी तथा तीन
रंग के आकर्षक आवरण से युक्त
रामगोपाल परदेसी द्वारा सम्पादित

गीत और सरगम

'गीत और सरगम' गीत सबन्धी एक महत्व पूर्ण संकलन है। इसमें बच्चन, नेपाली, नीरज आदि १०१ कवि और कवयित्रियों के मधुर गीत संकलित हैं। प्रत्येक कवि के तीन गीत चित्र परिचय के साथ प्रकाशित किये गये हैं। सजिल्द सचित्र मूल्य ६ रुपये।

गीतांकुर

इसमें माखनलाल चतुर्वेदी, बच्चन, अंचल, नीरज, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप 'राही' देवीप्रसाद 'राही' सुधाशर्मा, निर्मला साधना, माधवी रानी 'छाया' आदि १०१ कवि और कवयित्रियों के २०२ गीत और कविताएँ परिचय के साथ संग्रहीत हैं। सचित्र मूल्य ५ रुपये।

गूँजते-स्वर

इसमें १०१ आधुनिक हिन्दी कवि और कवयित्रियों के श्रेष्ठ गीत संकलित हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर सुप्रसिद्ध नये पुराने कवियों की दो-दो काव्य पंक्तियाँ प्रकाशित की गई हैं। सजिल्द मूल्य ५ रुपये।

उद्गम

हिन्दी कवियों की संजोई गई सारी पूंजी में से चुन-चुनकर संकलित की गई बेशकीमती मणियाँ, तरतीब से सजाया एक सतलड़ा हार। माखनलाल चतुर्वेदी,

दिनकर, बच्चन, अंचला बलबीर सिंह 'रंग' नीरज, रामावतार त्यागी, रामानन्द दोषी, रूपनारायण त्रिपाठी, रमानाथ अवस्थी, महादेवी वर्मा, विद्यावती कोकिला, सुमित्राकुमारी सिन्हा आदि २०५ कवि और कवयित्रियों के महकते हुए गीत । सजिल्द मूल्य ५ रुपये ।

लोकप्रिय रुबाइयाँ

हिन्दी उर्दू के चुने हुए सुप्रसिद्ध कवियों की लोकप्रिय रुबाइयाँ प्रस्तुत की गई हैं । हर पृष्ठ उर्दू शायरी के महान शायरों दर्द, मीर, सौदा, जौक, मोमिन, जफर दाग, अकबर, हजात, जिगर मुरादाबादी, इकबाल, चकबस्त, फानी, शकील बदायूनी, जोश मलीहाबादी, मजाज, फैज आदि की सर्वश्रेष्ठ रुबाइयाँ भी हैं । रुबाई साहित्य का यह संकलन प्रमाणिक इतिहास है ।

सजिल्द मूल्य चार रुपये ।

सदाबाहर गुलाब

प्रस्तुत पुस्तक महामानव स्व० नेहरूजी से सम्बधिन्त है । इसमें अनेक सुप्रसिद्ध हिन्दी कवियों की भावभीनी श्रद्धांजलियां हैं । हर पृष्ठ पर नेहरूजी की प्रेरणात्मक सूक्तियां हैं । देशी विदेश के अनेक नेता, साहित्यकारों के संदेश है साथ ही नेहरूजी के हास्य व्यंग्य भी प्रस्तुत किये गये हैं । सजिल्द मूल्य तीन रुपये ।

युग ध्वनि

यह गीत, नवगीत और नई कविता का संकलन है । इसके तीन भाग हैं । पहले भाग में गीत और दूसरे में नवगीत और तीसरे भाग में नई कविताएँ हैं । सजिल्द, प्रत्येक भाग का मूल्य ४ रुपये है ।

साहित्यालोक (प्रेस में)

इसमें १५०० हिन्दी लेखकों के परिचय और चित्र प्रस्तुत हैं । यह सभी के लिए अत्यंत उपयोगी प्रामाणिक संग्रहणीय ग्रंथ है ।

सजिल्द-सचित्र मूल्य १२ रुपये ।

देहरी के बाहर
(लेखक विद्यभास्कर वाजपेयी)

प्रस्तुत पुस्तक 'देहरी के बाहर' गागर में सागर है । लेखक ने नारी से सम्बन्धित अत्यन्त उपयोगी सारगर्भित निबंध प्रस्तुत किये हैं। प्रत्येक लेख अपने में पूर्ण और स्थाई महत्व का है । स्त्रियों के लिए ज्ञानवर्द्धक तथा प्रेरणात्मक पुस्तक है और प्रत्येक भारतीय माता पिता को अपनी कन्या के विवाह के अवसर पर भेंट स्वरूप देने योग्य एक अनुपम उपहार है ।

मयखाना
(लेखक शैदी)

प्रस्तुत पुस्तक में उर्दू शायर 'शैदी' की हालावादी १०१ रुबाइयां संकलित की गई हैं। रस, रूप, रंग, यौवन, प्रणय, मस्ती और लड़खड़ाहट से भरपूर यह संकलन आपको अवश्य ही पसन्द आयेगा। इसका नशा, दर्द और खुमारी, आप कभी नहीं भूलेंगे ।

जयघोष
(लेखक शान्ति अग्रवाल)

प्रस्तुत पुस्तक में विस्तारवादी चीन की प्रतिक्रिया के विरुद्ध राष्ट्रीय कविताएँ हैं। डा० बच्चन के शब्दों में प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही गोला बारूद प्रस्तुत करेगा । दुश्मन को हटाने के लिए एक मोर्चा शब्दों का भी खोलना होगा ।

गजलांजलि
(सं० रामगोपाल परदेसी)

हिन्दी कवि और कवयित्रियों की गजलों का पहला जवाब संकलन है । हर पृष्ठ पर उर्दू के मशहूर शायरों के बेहतरीन शेर प्रकाशित करने से पुस्तक में अत्यन्त रोचकता आ गयी है । इसे कोई आशिक मिजाज पढ़े तो धड़क उठे और कोई कविता-प्रेमी पढ़े तो ललक उठे ।

पुस्तकें हिन्दी में निकली हैं। इनमें कुछ ऐसी हैं जो अंग्रेजी से अनूदित की गई हैं और जिनकी हिन्दी में कमी थी। बाल-साहित्य में आजकल विभिन्न प्रदेशों के लोक-गीतों एवं लोक-कथाओं पर सुन्दर सचित्र पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं, जिसके द्वारा हमारे शिशु एवं किशोरों मेंसाहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न हो रही है। डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान ने साहित्यिकों की बालोपयोगी जीवनियाँ लिखने की प्रथा का सूत्रपात किया है।

यात्रात्मक साहित्य—हिन्दी में इस प्रकार के साहित्य-सृजन में **सत्यदेव परिव्राजक, राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन, डॉ० सत्यनारायण, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० भगवतसरण उपाध्याय, अज्ञेय, रामवृक्ष बेनीपुरी, श्री ब्रजकिशोर नारायण, मोहन राकेश अक्षयकुमार जैन, यशपाल जैन, सेठ गोविन्ददास** तथा **कुलभूषण** आदि ने विशेष योग दिया है। इन साहित्यकारों ने हिन्दी-पाठकों के सम्मुख सरस एवं सरल भाषा में देश या विदेश के सुन्दर वृत्तान्त प्रस्तुत किये हैं।

शिकार-साहित्य—शिकार-साहित्य में विशेष योग देने वालों में **श्रीराम शर्मा** एवं **बाबू वृन्दावनलाल वर्मा** का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सारांश यह कि हिन्दी-गद्य में आज सब विषयों की पुस्तकें उपलब्ध हैं। अनूदित रूप में भारत और विदेश की सभी विषयों की पुस्तकों को हिन्दी में लाने का स्तुत्य प्रयत्न भी चल रहा है। इस दिशा में साहित्य-अकादेमी द्वारा प्रकाशित साहित्य ने विशेष योगदान दिया है।

●